जीवन विद्या
(शिविर सार)

संकलन:
आतिशी मारलीना एवं प्रवीण सिंह
मानवस्थली, भोपाल

अंतिम संशोधन: दिसम्बर, 2009
सम्पर्क सूत्र: atishi@gmail.com, pravsing@gmail.com

1. संदर्भ स्थापन

- **प्रत्येक मनुष्य सुखपूर्वक जीना चाहता है**
  - यह चाह मनुष्य में निहित है
  - इसे हम आसानी से जाँच भी सकते हैं – स्वयं में, अपनी परस्परताओं में, शेष सभी मनुष्यों में – कि मनुष्य कोई भी कार्य-व्यवहार इसीलिए करता है क्योंकि वह *मानता है* कि वैसा करने से उसे सुख मिलेगा
- अब एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है: क्या हम सुखी हो पाते हैं?
- जाँचने पर दिखता है कि हम सुखी होते तो हैं... परन्तु...

…एक सरल नज़र से अपनी ज़िन्दगी को देखें तो कुछ ऐसी लगती है:

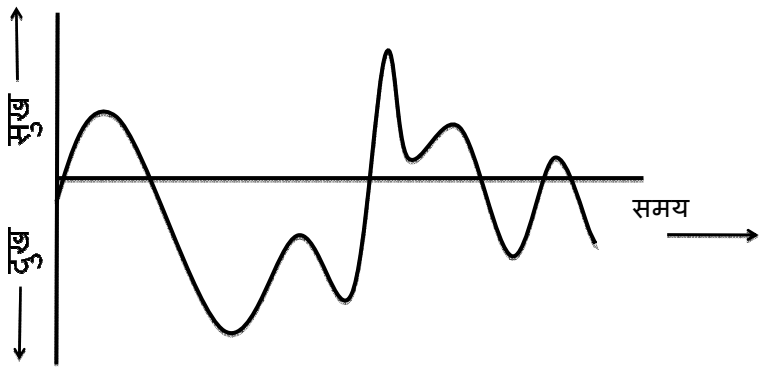

- अत:ऐसा नहीं है कि हम कभी भी सुखी नहीं होते, परन्तु उसकी निरंतरता नहीं बन पाती
- और हम अपने अन्दर झाँकें तो देख पाते हैं कि हम केवल सुख ही नहीं चाहते, हम सुख की निरंतरता चाहते हैं !

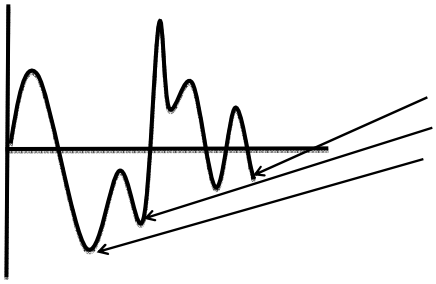

अपने जीने में इन हिस्सों को एक नाम दे सकते हैं: **'समस्या'**

हम यह भी कह सकते हैं कि समस्याएँ इस बात का प्रमाण हैं कि हमारी 'निरंतर सुख' की चाह पूरी नहीं हो पा रही है।

आइए, जरा विस्तार से देखते हैं कि किस-किस प्रकार की समस्याएँ हमारी ज़िन्दगी में आती हैं…

‘समस्याएँ ’: कुछ उदाहरण और एक वर्गीकरण

व्यक्तिगत समस्याएँ

स्वयं में विश्वास की कमी, अकेलापन, असंतुष्टि, मन ना लगना, जीने में निरर्थकता का भाव, उलझनें, द्वंद, अस्वस्थता

पारिवारिक समस्याएँ

भेद-मतभेद, अविश्वास, ईर्ष्या, द्वेष संबंधों में उपेक्षा, परिवारों में टूटन

सामाजिक समस्याएँ

गरीबी, शोषण, अन्याय भ्रष्टाचार, महंगाई,अपराध असमानता, युद्ध , आतंकवाद

प्राकृतिक समस्याएँ

प्रदूषण, जंगलों का कटना ऋतु परिवर्तन, जल-स्तर गिरना, प्राकृतिक असंतुलन

हालाँकि हमने समस्याओं को चार अलग खाकों में डाला है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह एक-दूसरे से पृथक हैं। यह देख पाना अत्यंत आवश्यक है कि यह एक दूसरे से अविभाज्य रूप में जुड़ी हुई हैं, गुथी हुई हैं।

अब एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है:
इन समस्याओं का कारक तत्व कौन/क्या है?

- अगर हम अपने आस-पास देखें तो चार अवस्थाएँ दिखती हैं
  - पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था, मानव
- पहली तीन अवस्थाओं के आचरण को जाँचने पर दिखता है कि वे स्वयं में व्यवस्थित हैं, व अन्य अवस्थाओं के साथ सन्तुलन बनाए रखती हैं.
- मानव ही एक ऐसी इकाई है जिसका आचरण असन्तुलनकारी है। मानव का अन्य तीनों अवस्थाओं के साथ संबंध असन्तुलित है, और अन्य मनुष्यों के साथ भी अव्यवस्थित जीता है।

अत: ऐसा कहा जा सकता है कि सभी समस्याओं की जड़ ‘मानव का आचरण’ ही है

ज़रा सोचिए, अजीब विडम्बना है:

हम मानव निरंतर सुखपूर्वक जीना चाहते हैं। परन्तु हमारे ही आचरण से अनेकों समस्याएँ घट रही हैं, जो हमारी ही मूल चाह में बाधक हो जा रहीं हैं

पर मानव ऐसा क्यों कर रहा है *?!*

आइए, इस विरोधाभास की जड़ तक पहुँचने के लिए मानव की आचरण प्रक्रिया को समझने का प्रयास करते हैं…

मानव की आचरण प्रक्रिया

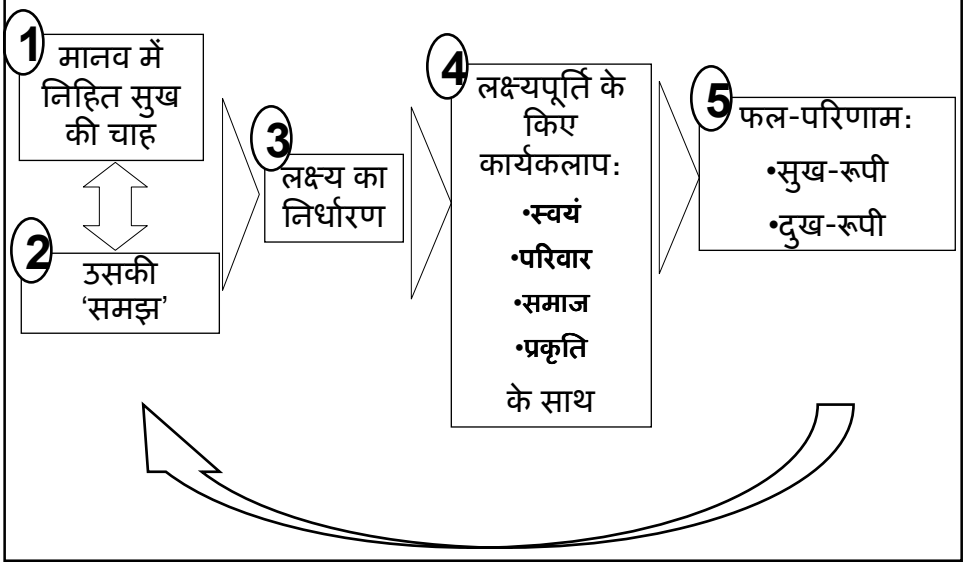

उपरोक्त आकृति में हम देख सकते हैं कि गड़बड़, #2 बक्से में हो रही है:

अर्थात, मानव की समझ में कमी/ अपूर्णता/ त्रुटि वश, हमारे जीने में कई प्रकार की 'समस्याएँ' प्रकट हो जा रही हैं

अगर 'समस्याएँ' मानव कि समझ में कमी का संकेत हैं, तो दो संभावनाएँ बनती हैं:

1 ऐसी कोई पूर्ण/सही समझ है ही नहीं जो सर्व मानव में निहित सुख की चाह को पूरा कर सके

- दुनिया दुखरूपी है – सृष्टि में एक ऐसी इकाई है जो निरंतर सुखपूर्वक जीना चाहती है, परन्तु सृष्टि में उसके सुखपूर्वक जीने की संभावना ही नहीं है!
- समस्याएँ हमेशा बनीं रहेंगी, मानव को समस्याओं के साथ जीना सीखना होगा

2 ऐसी पूर्ण/ सही समझ तो है, परन्तु मानव जाति ने अभी उसे पाया नहीं है

- आज की अवाँछित स्थितियाँ/ समस्याएँ मानव की समझ में कमी के कारण हो रही हैं
- पूर्ण समझ होने पर समस्या पैदा नहीं होगी - मानव के निरंतर सुखपूर्वक जीने की संभावना है

हमारी प्रस्तावना :

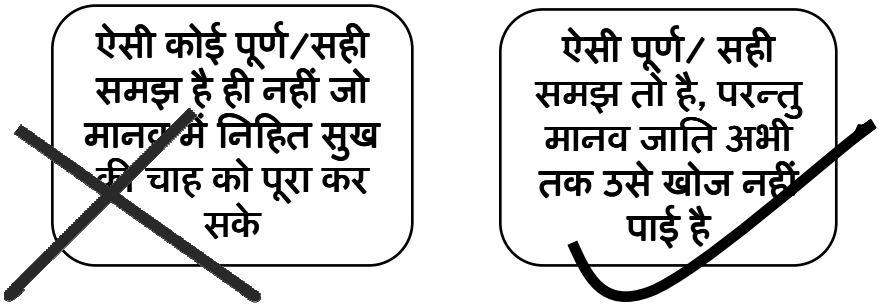

जीवन विद्या/ सह-अस्तित्ववाद, एक ऐसी ही पूर्ण समझ का प्रस्ताव है

जीवन विद्या क्या है?

- जीवन विद्या, श्री ए नागराज(अमरकंटक, मध्य प्रदेश) के अनुसन्धान का प्रकाशन है। किसी क्रम में मानव जीवन के प्रयोजन, मानवीय चरित्र एवं मानवीय व्यवस्था को लेकर उनके मानस में कुछ प्रश्न उठे, और वह इस अनुसन्धान के लिये प्रेरित हुए
- मूलत: जीवन विद्या, सभी मानवों के तृप्तिदायक एवं सार्थक जीने की विधि का एक प्रस्ताव है
  - 'प्रस्ताव' का मतलब ही है कि हर व्यक्ति को इसे ***स्वयं में, स्वयं से, स्वयं के लिये,*** जाँचना होगा
- वस्तु रूप में, इस में 'मानव के अध्ययन' का एवं 'अस्तित्व के अधययन' का एक निश्चित एवं स्पष्ट प्रस्तावना है
- इस प्रस्तावना के आधार पर मानव के जीने के सभी आयामों पर, यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्पादन, विनिमय, आचरण, न्याय, संविधान, व्यवस्था, सन्तुलित जीवन शैली पर निश्चित, सार्वभौमिक, एवं व्यावहारिक समाधान उद्गमित होता है

जीवन विद्या का सटीक नाम **सह- अस्तित्ववाद** है

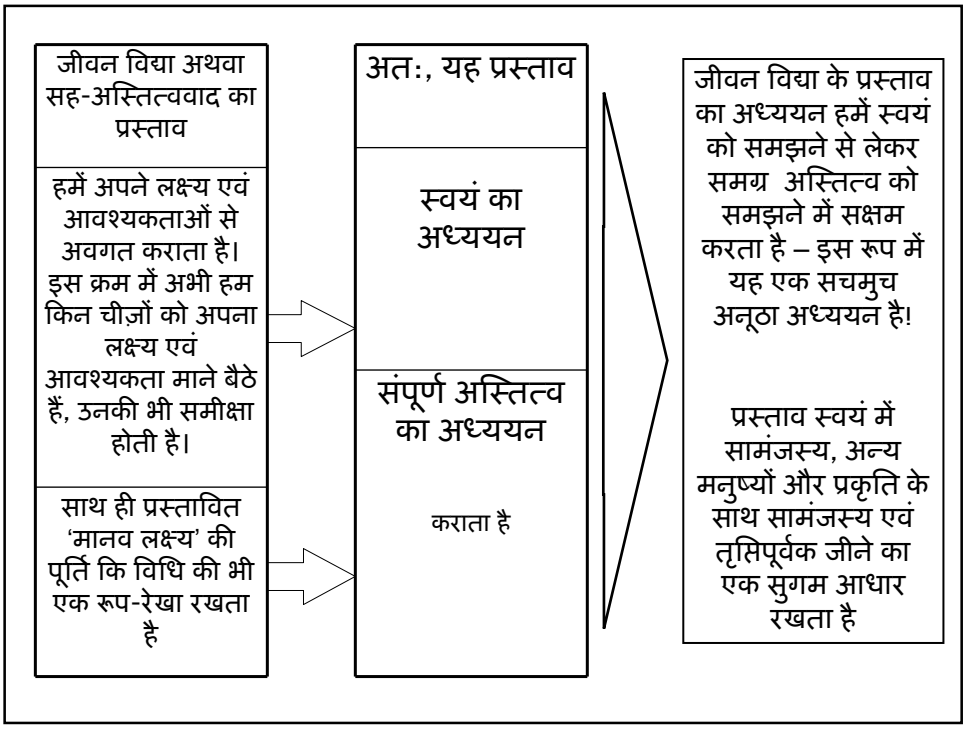

जीवन विद्या के प्रस्ताव को विस्तार से देखने के पहले, एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है:

यदि समस्या मानव की 'समझ में कमी' का संकेत है, तो हम ने (मानव जाति ने) इन संकेतों/ अवसरों का उपयोग कर, अपनी समझ को पूर्ण/ सही क्यों नहीं कर लिया?

क्योंकि हमारी अभी की समझ में, ऐसी बहुत सी मान्यतायें घर कर गयी हैं, जिनकी वजह हम इन समस्या-रूपी संकेतों को, *जाने-अनजाने में,* दबाते हैं, उनसे भागते हैं, अथवा उन्हें अनदेखा कर देते हैं!

कुछ ऐसी प्रचलित मान्यताएँ...

- सुख-दुख साथ-साथ हैं। अगर दुख न हो तो हम सुख को समझ ही नहीं पाएँगे।
- लोग साथ रहते हैं तो अनबन होती ही है – "बर्तन हैं तो बजेंगे ही"। समझौता ही समझदारी है।
- पैसे से सब कुछ ठीक हो जाएगा।
- स्वार्थ, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या मानव में स्वाभाविक स्थितियाँ हैं। यह हर मनुष्य में होंगी ही ।
- पति-पत्नी में नोंक-झोंक स्वाभाविक है।
- पढ़-लिख लिए, नौकरी लग गई, शादी हो गई, 1-2 बच्चे हो गए तो ज़िन्दगी 'settle' हो गई ।
- सब लोग सफ़ल नहीं हो सकते। किसी की भी सफ़लता कुछ अन्य की असफ़लता पर टिकी है।
- अगर समस्याएँ खत्म हो गईं तो विकास रुक जाएगा, ज़िन्दगी 'boring / monotonous' हो जाएगी ।
- मानव को शेष प्रकृति को काबू करना है, उसपर विजय पानी है। तकनीकी सभी समस्याओं हल कर सकती है। .
- विकास होगा तो प्रदूषण होगा ही।

ऐसी सभी मान्यताओं पर यह प्रश्न पूछने ज़रूरी हैं:

- क्या ये वाकई में सच हैं?
- क्या यह हम को सहज रूप में स्वीकार होती हैं ?
- और सबसे ज़रूरी, क्या इन्हें मानने से मुझ में निहित 'सुख की चाह' की पूर्ति हो पाती है?

या

- क्या हमने इन्हें बिना जाँचे स्वीकार लिया है अथवा ***मान*** लिया है?
- क्या ये मज़बूरी वश समझौते हैं – जिन्हें हम झेल रहे है - क्योंकि हमारे पास इनसे अच्छे उत्तर नहीं हैं?

और, ऐसी अनजाँची मान्यताओं का सबसे अवाँछित परिणाम यह है कि ये हमारी समझ को पूरा करने की प्रक्रिया पर ताला लगा देती हैं, हमें बेहतर उत्तर तलाशने से रोक देती हैं !

मानव की समझ में कमी दो प्रकार से होती है:

1. समझने की **प्रक्रिया** में कमी:
   हम बिना जाँचे मान लेते है

2. समझ की **वस्तु** में कमी:
   जो 'सब कुछ' मानव को समझने की ज़रूरत है – अपनी सुख की चाह की पूर्ति के लिए – वह 'सब कुछ' अभी हमने समझा नहीं है

समझने की प्रक्रिया में कमी

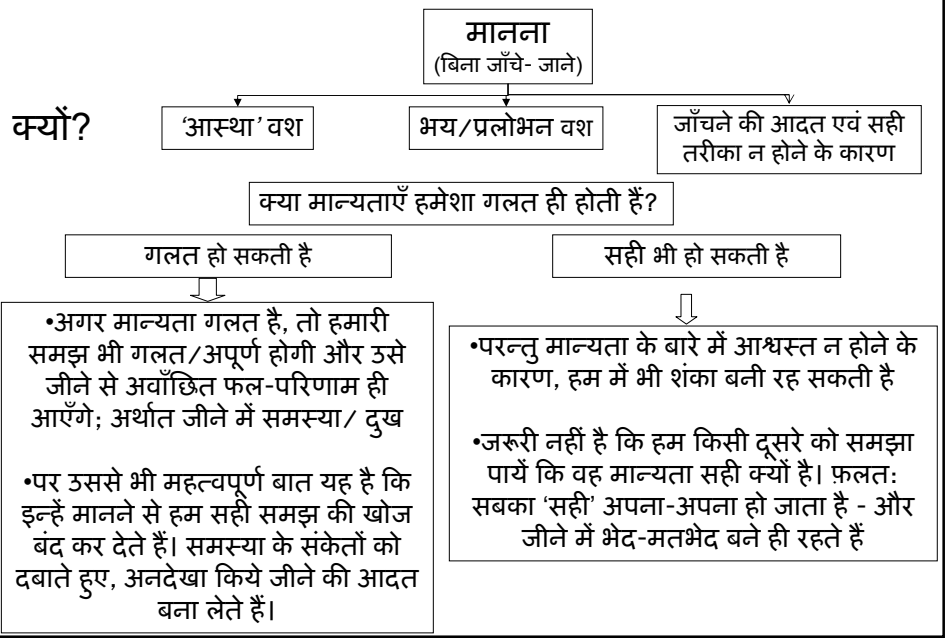

समझने की प्रस्तावित प्रक्रिया

जानना
(और उसके आधार पर मानना)

1. **परीक्षण ,** अर्थात यह चार प्रश्न पूछना:
   - क्या? क्यों? कैसे? कितना?

2. **(उपरोक्त उत्तरों की) सार्वभौमता को जाँचना** :
   - क्या उत्तर मुझे सहज स्वीकार होते हैं ?
   - क्या उत्तर मेरे साथ जीने वाले अन्य मनुष्यों को स्वीकार होंगें ?
   - क्या उत्तर ***सभी*** मनुष्यों को स्वीकार होंगे ?

3. **(उपरोक्त उत्तरों को) जी कर देखना:**
   - स्वयं में तृप्ति
   - परस्परता में उभय तृप्ति
   - प्रकृति में सन्तुलन / सह-अस्तित्व

समझ की पूर्ण वस्तु :

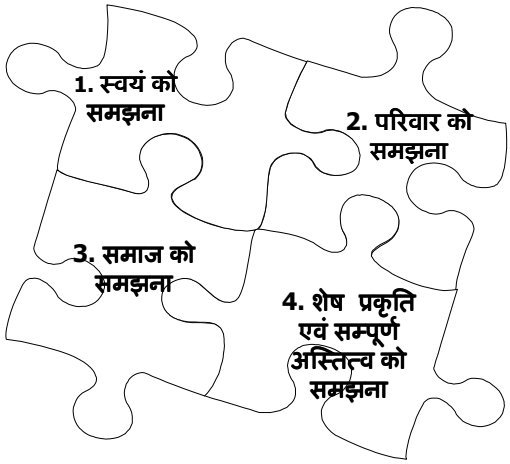

‘पूर्ण’ समझ की विषय-वस्तु के कुछ सूचक

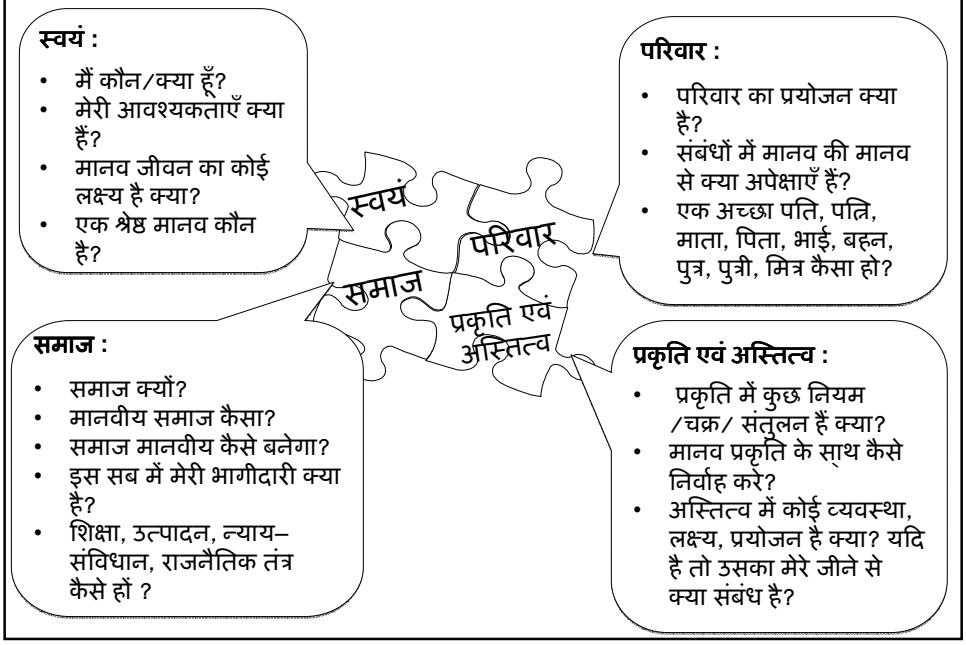

आईए, ज़रा ‘सुख’ को समझते हैं :

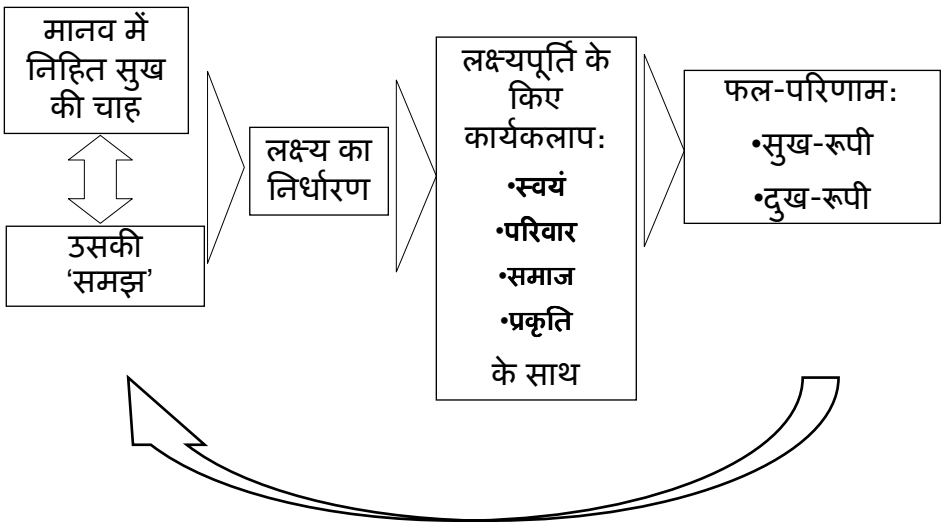

सुख के स्रोत:

1. **इन्द्रिय आस्वादन**
2. **भावमूलक आस्वादन**
3. **लक्ष्यमूलक आस्वादन**

जाँच: किस स्रोत में 'निरंतर सुख' की संभावना है?

1. इन्द्रिय आस्वादन ✗	**2.** भावमूलक आस्वादन ?	**3.** लक्ष्यमूलक आस्वादन ?
संभावना नहीं है	**पता नहीं/शायद**	**पता नहीं/शायद**
इन्द्रिय आस्वादन तभी अच्छे लगते हैं जब शरीर को इनकी आवश्यकता है	इस में निरंतरता की संभावना तो लगती है, परन्तु हमने ऐसा घटते हुए कम ही देखा है	इसमें भी निरंतरता की संभावना तो लगती है, परन्तु अभी तक जिन लक्ष्यों के लिए हम प्रयासरत रहे हैं, उनका मज़ा समय के साथ फ़ीका भी पड़ता देखा है

क्या ऐसा हो सकता है कि जिन लक्ष्यों के लिए हम प्रयासरत रहे हैं, वे:

- तुलना व परिस्थिति से चालित थे, इसलिए कुछ समय बाद उनका महत्व कम लगने लगता है?
- पूर्ण नहीं थे, फ़लत: हमारी ज़िन्दगी के कुछ आयाम उपेक्षित रह जाते रहे?
- 'मानव की क्षमता' के अनुरूप अथवा 'पर्याप्त' नहीं थे इसलिये हमें स्थाई एवं पूर्ण रूप से तृप्त नहीं कर सके?

'निरंतर सुख': एक प्रस्तावना

लक्ष्यमूलक आस्वादन	भावमूलक आस्वादन	इन्द्रिय आस्वादन
मानव की ज़िन्दगी का एक निश्चित लक्ष्य है – जो मानव क्षमता के योग्य है। इस लक्ष्य अथवा प्रयोजन के अर्थ में जीने से ही मानव निरंतर सुखी हो पाता है	वह परस्परतायें जो 'मानव योग्य लक्ष्य' के अर्थ में साथ हैं, उन्हीं में भावों भी निरंतरता बन पाती है	जब मानव को लक्ष्य एवं भावों से सुखास्वादन की निरंतरता होती है, तो इन्द्रिय आस्वादन स्वयंस्फ़ूर्त रूप में नियंत्रित होते हैं

मानव में निरंतर सुख की संभावना सही लक्ष्य की पहचान पर टिकी है; ऐसा लक्ष्य जो मानव की क्षमता के योग्य हो

तो ऐसा क्या लक्ष्य है, जो मानव की क्षमता के योग्य है, मानव की क्षमता को तृप्त करे?

आइए, मानव में निहित क्रियाओं के माध्यम से मानव के लक्ष्य को समझने का प्रयास करते हैं

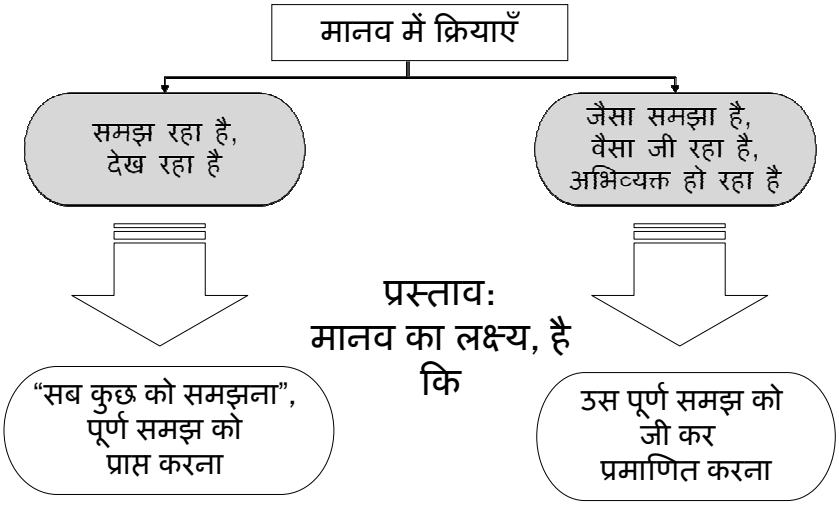

'सब कुछ' से क्या अभिप्राय है?

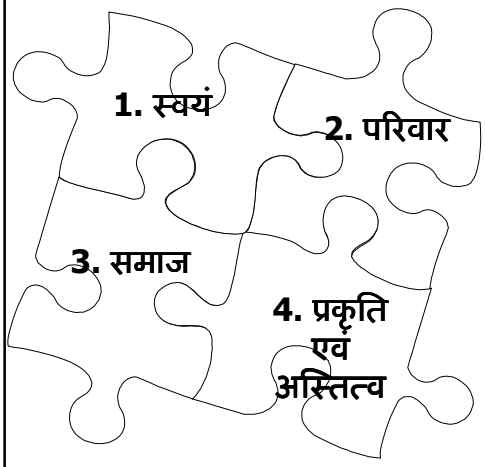

जीने में क्या अभिव्यक्त/प्रमाणित क्या होगा?

1. **समाधान:** व्यक्ति में समझ की पूर्णता
2. **समृद्धि एवं भावमयता:** हर परिवार अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पहचाने, उन की पूर्ति कर सके और संबंधों में भावों की निरंतरता बनी रहे
3. **अभय:** ऐसा समाज जिस में विश्वास, न्याय, परस्पर पूरकता हो
4. **सह-अस्तित्व:** प्रकृति की चारों अवस्थाओं में संतुलन

यही मानव का लक्ष्य अथवा प्रयोजन है। इसी को समझना और प्रमाणित करना निरंतर सुख की स्थिति है।

मानव लक्ष्य

- मानव अपने जीने के सभी स्तरों पर एक पूर्णता, एक संगीतमयता चाहता है
- हर मानव श्रेष्ठ होना चाहता है, अर्थात जो कुछ भी एक मानव समझ/कर/पा सकता है, उसे समझना/करना/पाना चाहता है
- मानव अन्य सभी इकाईयों के साथ अपने संबंध को समझ कर, उसका निर्वाह करना चाहता है
- ऐसे जीने में ही स्व-सुख है, और इसी में सर्व-शुभ है

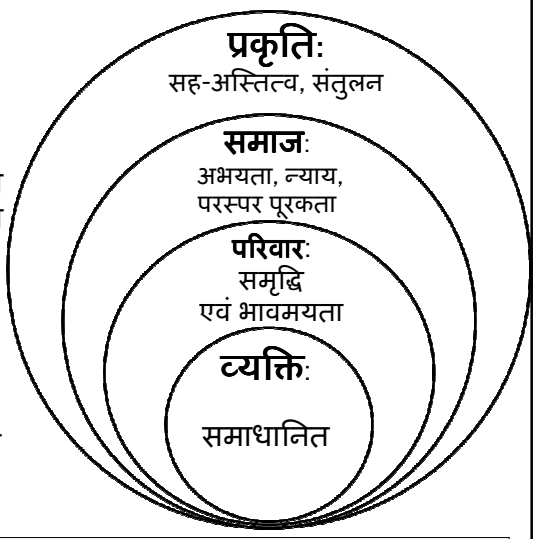

हम अपने में जाँच सकते हैं कि,
किसी भी मानव का इससे कम में काम नहीं चलेगा …
… और किसी को भी इससे ज़्यादा की ज़रूरत नहीं है!

अभी तक जो कहा गया है, उसकी रोशनी में हम एक संक्षिप्त तुलना कर सकते हैं कि

•

अभी हम क्या मानते हैं, कैसे जीते हैं और उसके क्या फल-परिणाम आ रहे हैं…

•

और

•

यह प्रस्ताव क्या कह रहा है…

प्रचलित जीना...

चाह	लक्ष्य	पाने की विधि	फल-परिणाम
• चाह अस्पष्ट, अथवा ज़्यादा-से-ज़्यादा, "**अच्छा लगने**" तक की चाह	•इंद्रिय आस्वादन •सुविधा संग्रह •दूसरों का ध्यान पाना •उपरोक्त सभी की निरंतर बढ़त	•**दूसरों से ज़्यादा** रूप, पद, धन, बल अथवा 'विशेष' बनना	• **व्यक्ति** –'साधन-विहीन दुखी-दरिद्र' एवं 'साधन-सम्पन्न दुखी-दरिद्र' – अकेलापन, निरर्थकता, अस्वस्थता सार्वभौम रूप में व्याप्त • **परिवार** –अविश्वास, टूटन, ईर्ष्या-द्वेश, भेद-मतभेद –भौतिक साधनों, प्रतीकों को वरीयता –संबंधों की उपेक्षा • **समाज** –शोषण, वर्ग, द्रोह-विद्रोह, आतंकवाद, युद्ध –कामोन्माद, भोगोन्माद, लाभोन्माद • **प्रकृति** –विनाश के कगार पर

प्रस्तावित जीना...

चाह	लक्ष्य	पाने की विधि	फल-परिणाम
निरंतर सुख अर्थात 'अच्छा होना'	जीने के सभी स्तरों पर पूर्णता एवं संगीतमयता की स्थिति। स्तर से अभिप्राय • व्यक्तिगत •पारिवारिक •सामाजिक •प्राकृतिक	•समझ-पूर्णता -स्वयं -परिवार -समाज -प्रकृति -अस्तित्व में व्यवस्था कि समझ •आचरण-पूर्णता उपरोक्त सभी स्तरों पर जीने में व्यवस्था का प्रमाण	• **व्यक्ति** – समाधानित – सामाजिक – स्वावलम्बी • **परिवार** – समृद्ध – भावमय • **समाज** – अभयता, न्याय, विश्वास – परस्पर पूरकता • **प्रकृति** – सह-अस्तित्व, संतुलन – आवर्तनशीलता

2. स्वयं में व्यवस्था

स्वयं को समझने का अर्थ है, इन प्रश्नों के उत्तर होना:

1. मैं क्या चाहता हूँ? मेरी ज़िन्दगी का कोई लक्ष्य है क्या?
2. मेरी आवश्यकताएँ क्या हैं ? क्या उनकी पूर्ति की कोई निश्चित व आश्वस्त विधि है?
3. मैं कौन हूँ, क्या हूँ?
4. मुझ में क्या क्रियाएँ अथवा क्षमता है?

और इसी संदर्भ में निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तरित होना भी ज़रूरी है:

5. अन्य मनुष्यों से मेरा क्या संबंध है? कैसे जिऊँ कि उन संबंधों का निर्वाह भी हो और स्वयं भी तृप्त हो पाऊँ?
6. प्रकृति से मेरा क्या संबंध है? कैसे जिऊँ कि उस संबंध का भी निर्वाह हो और स्वयं भी तृप्त हो पाऊँ?
7. क्या अस्तित्व/ सृष्टि में कोई व्यवस्था है? क्या हम उसे समझ सकते हैं? क्या उसे समझने की आवश्यकता है?

मानव क्या चाहता है?

- हम चाहते हैं…
  - ➢ निरंतर सुख
- सुख के स्रोत हैं…
  - ➢ इन्द्रिय आस्वादन
  - ➢ भावमूलक आस्वादन
  - ➢ लक्ष्यमूलक आस्वादन
- निरंतर सुख की संभावना तब ही है …
  - ➢ अगर हम मानव योग्य लक्ष्य को पहचान कर, उसके अर्थ में जिएँ

मानव की आवश्यकताएँ:

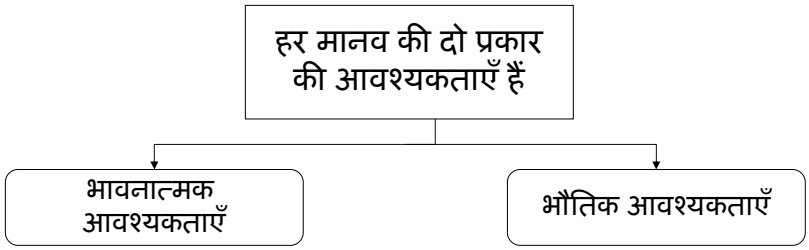

- सही समझ
- स्वयं में सलक्ष्य होने का अथवा सार्थकता का भाव
- अन्य मनुष्यों के साथ विश्वास, सम्मान, स्नेह, प्रेम इत्यादि जैसे भाव

- आहार, आवास
- उत्पादन के संसाधन
- दूरसंचार व यातायात के साधन

आईए, इन दो प्रकार की आवश्यकताओं में भेद को थोड़ी गहराई से देखते हैं:

	भावनात्मक आवश्यकताएँ	भौतिक आवश्यकताएँ
किस की आवश्यकता है?	• 'मेरी' आवश्यकता है	• शरीर के लिए
कब-कब चाहिए?	• हर पल- हर क्षण: निरंतर	• शरीर की आवश्यकतानुसार
किससे पूरी होती है?	•सही समझ से, उस समझ को जीने से स्वयं में भावों से	• प्रकृति पर श्रम नियोजन द्वारा प्राप्त भौतिक वस्तुओं से
कितनी चाहिए?	• इनका नाप-तौल बनता नहीं, परन्तु इनकी पूर्णता में चाहिए	• सीमित, निश्चित: परन्तु हर मनुष्य के लिए मात्रा अलग-अलग हो सकती है
क्या सबको समान रूप में चाहिए?	• हाँ, हर व्यक्ति को पूर्णता में चाहिए	• नहीं, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार

मानव: संरचना और आवश्यकताएँ

हर मानव दो इकाईयों का सह-अस्तित्व है

चैतन्य इकाई
जिसको नाम दिया है, 'जीवन'

- भावनात्मक आवश्यकताएँ जीवन की आवश्यकता हैं

भौतिक-रासायनिक इकाई,
जिसको नाम दिया है, शरीर

- भौतिक आवश्यकताएँ शरीर के लिए हैं

भौतिक 'वस्तुओं' से भावनात्मक आपूर्ति नहीं होती,
भावनात्मक 'वस्तुओं' से भौतिक आपूर्ति नहीं होती

ये दोनों एक-दूसरे की आपूर्ति नहीं करते,
अत: हर मानव के पास इन दोनों की पूर्ति के लिए निश्चित कार्यक्रम होने पड़ेंगे

सभी मानवों की यह दोनों ही आवश्यकताएँ है,
अत: दोनो की पूर्ति होने पर ही मानव निरंतर सुखपूर्वक जी पाता है

परन्तु अभी हम मानते हैं कि भौतिक वस्तुओं से सुखी हो जाएँगे।
यह इसलिए है, क्योंकि…

- अभी हम अपने आप को शरीर मात्र मानते हैं, इसलिये इन दो प्रकार की आवश्यकताओं को अलग अलग से पहचान ही नहीं पाएँ हैं
  - मूलत: हम अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप में पहचान नहीं पाएँ हैं - इसलिए उनकी पूर्ति का उचित कार्यक्रम हमारे पास नहीं है
  - जीने में एक खालीपन, एक अभाव का भास तो होता है - पर अस्पष्टा वश हम यह मान लेते **है कि भौतिक वस्तुओं में बढोतरी से वह दूर हो जाएगा।**
- यह भ्रम और भी गहरा हो जाता है क्योंकि समाज में सभी का जीना शरीर-मूलक अथवा भौतिकवादी ही है। प्रचलित मान्यताओं में मानव में श्रेष्ठता के सभी पैमाने भौतिक वस्तुओं पर ही आ कर टिक जाते हैं!
  - 'सामान से सम्मान' – ज़्यादा सामान (मकान, गाड़ी, कपड़े, इत्यदि) होने पर हमारे आस-पास वाले हमारा 'तथाकथित सम्मान' करते हैं – इससे भावनात्मक आवश्यकता की पूर्ति का भास होता है – परन्तु यह सम्मान हमारा नहीं है, ना ही यह सचमुच 'सम्मान' है, यह देखना आसान है
  - यह कमी देख पाने के बावजूद, विकल्प न होने के कारण, हम पुन: वैसे ही जीने को बाध्य होते हैं
- वर्तमान जीने की शैली में अनिश्चितता वश भी यह निर्धारित कर पाना बहुत मुश्किल हो गया है कि कितना पैसा/सुविधा संग्रह करना पर्याप्त है।

यह एक चौका देने वाला विश्लेष्ण तो है कि इस एक छोटी सी त्रुटि वश हमारे जीने में, समाज में क्या-क्या फ़लन हैं:

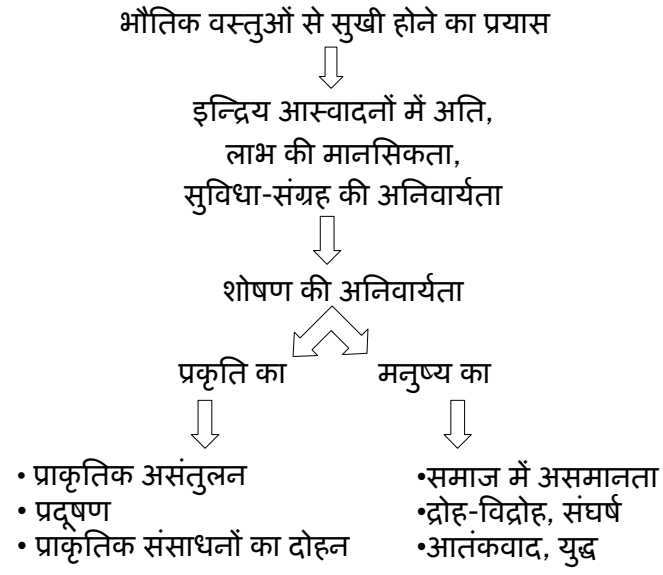

इस प्रस्ताव के अनुसार,

मानव की चाह और मानव की आवश्यकता में संबंध

- हम निरंतर सुखपुर्वक जीना चाहते हैं
- यह स्थिति हम में तभी बनती है जब हमारी दोनों प्रकार की आवश्यकताओं – भावनात्मक एवं भौतिक – की पूर्ति होगी
- मानव में निरन्तर सुख की चाह की पूर्ति की निश्चित विधि यही है कि हम सब कुछ को समझ लें अर्थात समाधानित हो जाएँ, और उस समाधान को अपने जीने में प्रमाणित करें। प्रमाण का प्रगटन इस प्रकार है:
  - स्वयं में समाधान
  - परिवार में समृद्धि एवं भावमयता
  - समाज में अभयता, न्याय एवं परस्पर पूरकता
  - ऐसी जीवन-शैली जिससे प्रकृति में सह-अस्तित्व और आवर्तनशीलता बनी रहे
- मानव की चाह पूर्ति अथवा उसकी आवश्यकता पूर्ति अथवा उसमें परम तृप्ति की यही स्थिति है

जीवन और शरीर का संबंध

- शरीर जीवन का **साधन** है
- किसी भी साधन को हमें:
  - 'चलाना' सीखना पड़ता है
  - उसकी देख-रेख करनी पड़ती है
  - उसके लक्ष्य/प्रयोजन/उपयोग को पहचान कर, उस अर्थ में प्रयोग करने पर ही तृप्ति है
- शरीर को 'चलाना' हम ने बचपन में सीखा है। उसकी देख-रेख सही आहार-विहार-श्रम-विश्राम से होती है।
- शरीर का प्रयोजन जीवन के लक्ष्य को प्रमाणित करना है
  - जीवन का लक्ष्य है कि वह संपूर्ण को समझ कर, और उस समझ को प्रमाणित करना - इसीके फलस्वरूप, जीवन में तृप्ति का अनुभव है
  - इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अस्तित्व में मानव शरीर एकमात्र साधन है
- जीवन शरीर को, मेधस के माध्यम से संचालित करता है

जीवन क्रियाएँ

इस विषय को हम तीन स्थितियों में समझेंगें:

- अपूर्ण समझ, अर्थात शरीरमूलक जीने की स्थिति में
- समझ पूर्ण करने के क्रम में, अर्थात, इस प्रस्ताव के माध्यम से अनुभवगामी स्थिति में
- पूर्ण समझ, अर्थात अनुभवमूलक स्थिति में

जीवन क्रियाएँ

शरीरमूलक अथवा अपूर्ण समझ की स्थिति में

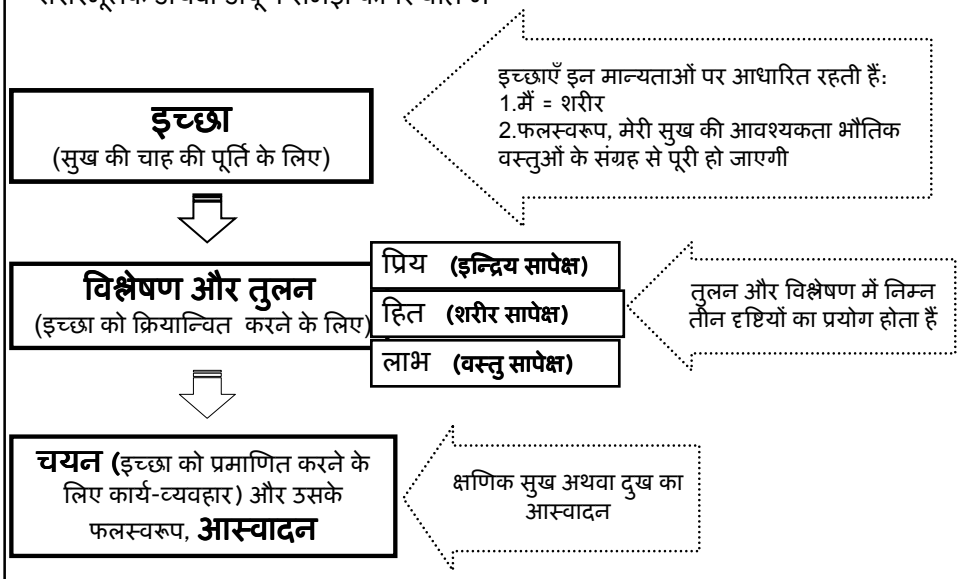

जीवन क्रियाएँ

शरीरमूलक अथवा अपूर्ण समझ की स्थिति में

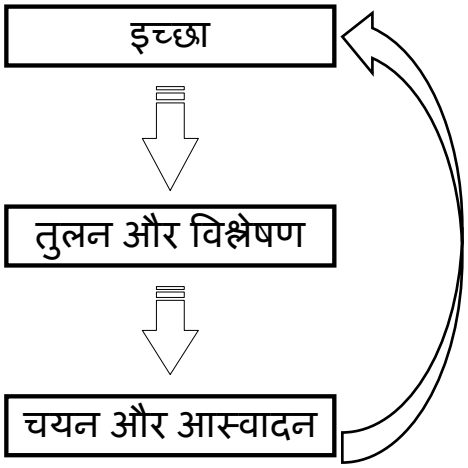

मानव में सुख का आस्वादन निरंतर अपेक्षित है. अभी तो हम इस अपेक्षा के प्रति सचेत भी नहीं हैं,और यदि हैं भी, तो हमारे पास इसकी पूर्ति की कोई निश्चित विधि नहीं है।

अपूर्ण समझ पर आधारित हमारी इच्छाएँ हमें क्षणिक सुख अथवा दुख का आस्वादन कराती हैं।

परन्तु अपनी आवश्यकताओं के प्रति अस्पष्टा वश हम ये मान लेते हैं कि तृप्ति के अभाव का कारण यह है कि जो हम ने चाहा और पाया, उसे और अधिक मात्रा में होना चाहिए था या किसी दूसरे प्रकार का होना चाहिए था - परन्तु यह प्रयोग भौतिक वस्तुओं की सीमा में ही होता रहता है! हम फिर कोई 'नई' इच्छा करते हैं और यह चक्र दोहराता रहता है...

जीवन क्रियायें

अपनी समझ पूर्ण करने के क्रम में अर्थात अनुभवगामी पद्धति

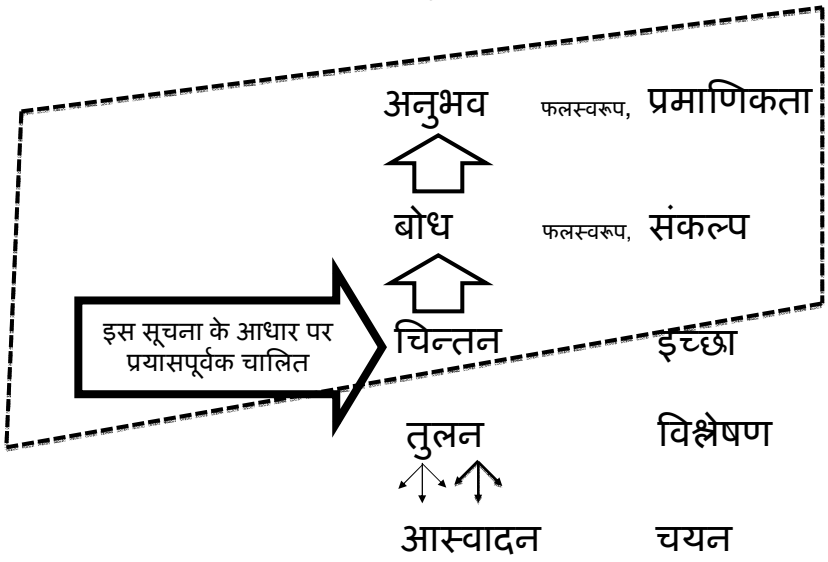

अनुभवगामी विधि में,

चिन्तन

- चिन्तन का अर्थ है 'क्यों' का प्रश्न पूछना, अर्थात, हर इकाई के प्रयोजन को पहचानना
- अस्तित्व में हर इकाई स्वयं में व्यवस्थित है, और संपूर्ण व्यवस्था में भागीदार है
  - चिन्तन का अर्थ है कि हर इकाई में निहित व्यवस्था और संपूर्ण व्यवस्था में उसकी भागीदारी को समझना – इसी को इकाई का प्रयोजन पहचानना भी कहा है
- चिन्तन शुरू करने के लिए अनिवार्य है कि
  - सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व की पूर्ण सूचना हमारे पास हो
  - मानव लक्ष्य की स्वीकृति एवं निष्ठा हम में हो; व्यवस्था में जीने की चाह हो
  - फिर, मानव में निहित कल्पनाशीलता व अनुमान के प्रयोग से यह प्रक्रिया चालित की जा सकती है

जीवन क्रियाएँ (पूर्ण समझ अर्थात अनुभवमूलक विधि)

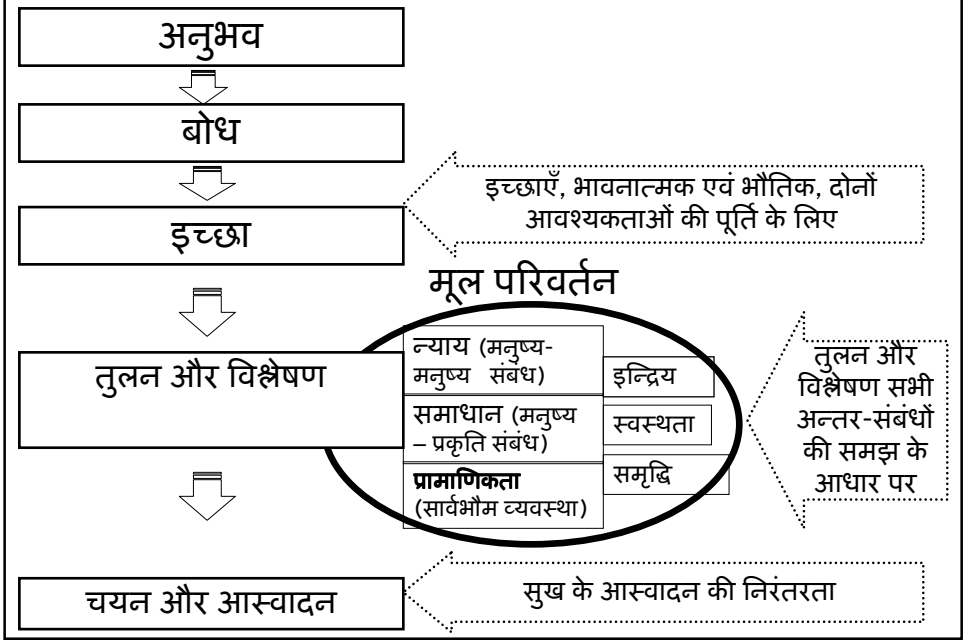

अपूर्ण समझ की स्थिति में तुलन की दृष्टियाँ

- स्वयं को शरीर, एवं अस्तित्व गत व्यवस्था कि अपूर्ण समझ वश हमारी तुलन की दृष्टियाँ यहीं तक सीमित रह जाती हैं:
  - प्रिय: क्या यह मेरी इन्द्रियों के लिए अनुकूल है ?
  - हित: क्या यह मेरे मिए सुविधाजनक है?
  - लाभ: क्या इससे मुझे लाभ होगा ?

- यह होना भी है – क्योंकि मानव अपने सुख को भौतिक वस्तुओं में ही मानता है। इसी का एक परिणाम दुनिया को संघर्ष रूपी समझना, और प्रतिस्पर्धा को अनिवार्य मानना हो जाता है। हर मनुष्य केवल अपने बारे में ही सोचने को बाध्य हो जाता है।

समझ पूर्ण होने से, मूल परिवर्तन तुलन की दृष्टियों में होता है

मानव=जीवन+शरीर, अस्तित्व = सह-अस्तित्व रूपी

हम जब अस्तित्व में सह-अस्तित्वरूपी व्यवस्था को समझते हैं और स्वयं को जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में देखते हैं, तो हमारी सुख की प्राप्ति की विधि में मनुष्य-मनुष्य संबंध, मनुष्य-प्रकृति संबंध, एवं सह-अस्तित्व प्रमाण की दृष्टियाँ प्रमुख हो जाती हैं।

पूर्ण समझ की स्थिति में मानव में तुलन की दृष्टियाँ:

- न्याय: अन्य मनुष्यों के साथ संबंध की पहचान और निर्वाह
- समाधान: चारों अवस्थाओं में सह-अस्तित्व की निरन्तरता
- प्रमाणिकता: ऐसी जीने की विधि जिससे मानव लक्ष्य की प्रप्ति हो – मेरे लिए भी, एवं अन्य सभी मनुष्यों के लिए भी
- प्रिय: इन्द्रिय दृष्टि पुष्टि के अर्थ में स्वयंस्फूर्त विधि से नियंत्रित होती है
- हित: की दृष्टि शरीर के स्वास्थ्य के अर्थ में नियोजित होती है
- समृद्धि: लाभ की दृष्टि, समृद्धि के अर्थ में नियोजित होती है

जीवन क्रियाएँ (पूर्ण समझ अर्थात अनुभवमूलक विधि)

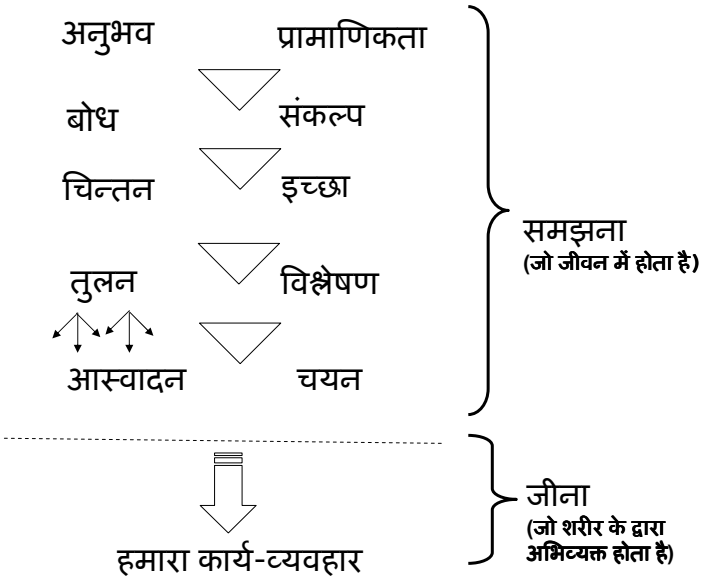

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि:

यदि हम कह रहे हैं कि निरंतर सुख के आस्वादन की अपेक्षा केवल अनुभवमूलक विधि से जीने से पूरी होती है, तो अभी तक मानव चिन्तन शुरु कर के अनुभव तक पहुँचा क्यों नहीं ?

मानव गत क्रियाएँ अपने गन्तव्य तक पहुँची क्यों नहीं?

इनमें होने वाले अटकाव-भटकाव की पहचान…

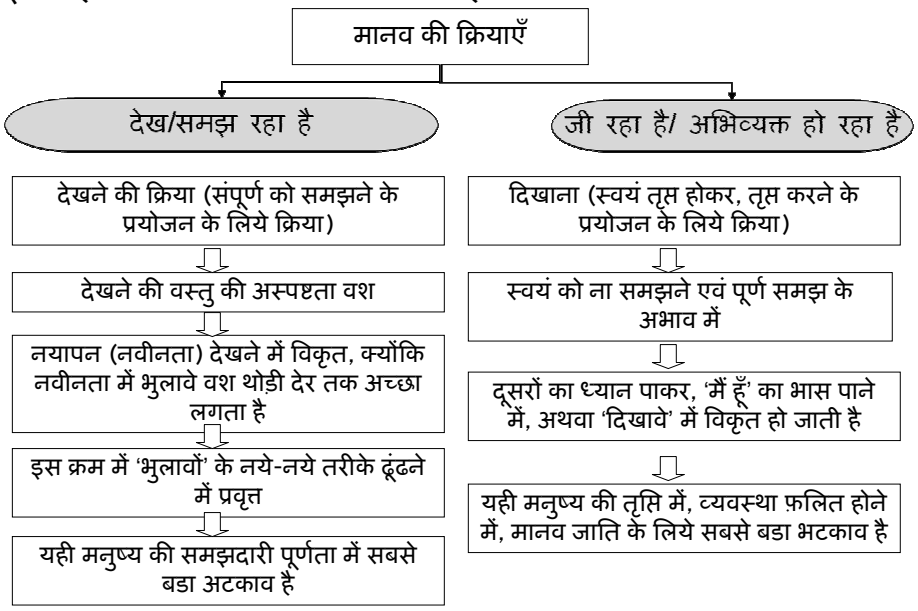

अगर हमें दिखावे-भुलावे में अच्छा लगता है तो उन्हें रोका क्यों जाए?

- क्योंकि इन में सुख की निरंतरता नहीं बन पाती
- और इस क्षणिक सुख के लिए भी हम अन्य मनुष्यों पर और भौतिक वस्तुओं के परतंत्र हैं
- दिखावे-भुलावे ही व्यक्ति, परिवार, समाज व प्रकृति में ***समस्त अव्यवस्था*** की जड़ हैं। अतः यह मूल चाह की पूर्ति में स्पष्ट बाधक हैं।

3. परिवार सहज व्यवस्था

मानवीय परिवार, मानव लक्ष्य का ही स्वाभाविक फैलाव है

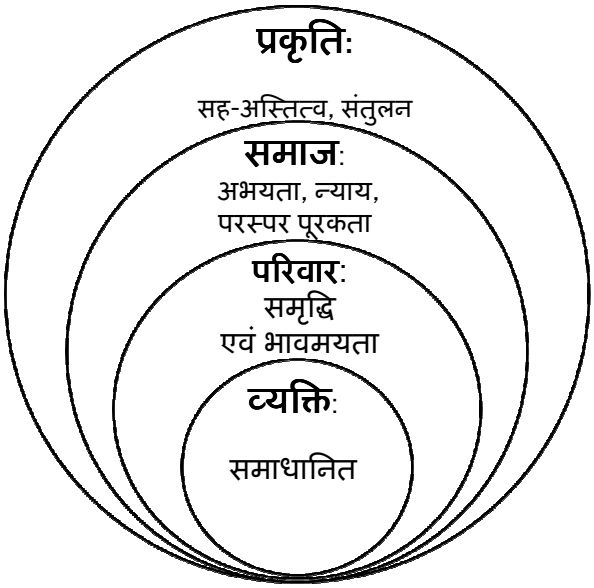

उपरोक्त चित्र यह कहने का प्रयास कर रहा है कि...

- मानव को सबसे पहले संपूर्ण अस्तित्व को समझना है
- समझने के उपरान्त उस समझ को प्रमाणित करना है – व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक स्तरों पर संगीतमयता के रूप में
- ऐसे जीने में हम स्वयं भी तृप्त होते हैं, और अस्तित्व में सभी इकाईयों के साथ अपने संबंध का निर्वाह करते हैं
- हाँलाकि इस स्थिति को सभी मानव चाहते हैं, परन्तु इसके प्रति हम अभी सचेत नहीं हैं।
- परन्तु सूचना मिलने पर, सामान्य निरीक्षण से यह दिखता है कि इससे कम में कोई मानव तृप्त नहीं होगा, और इससे ज़्यादा की ज़रूरत नहीं है

अतः इस प्रस्ताव के अनुसार, परिवार व समाज में भागीदारी, चित्र में दर्शाये मानव लक्ष्य के अर्थ/ संदर्भ में ही परिभाषित है

मानवीय परिवार, एवं उसका प्रयोजन

- मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने के अर्थ में, स्वेच्छा से साथ, निश्चित मनुष्यों का समूह ही मानवीय परिवार है
- परिवार वह आधारभूत स्थली है जहाँ मानव की भौतिक और भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है
- परिवार में बड़ों की भूमिका है कि वे अपने जीने में प्रमाण प्रस्तुत करें, और बच्चे उनसे स्वयंस्फ़ूर्त रूप में सही समझ को अर्जित करें
- परिवार वो स्थली है जहाँ हम सबसे पहले मूल्यों का आस्वादन करते हैं, और फिर विश्वास, सम्मान, स्नेह, प्रेम, जैसे भावों को जीने की क्षमता विकसित करते हैं
- मानव, परिवार के माध्यम से ही, उत्पादन में भागिदारी कर समृद्धि का अनुभव करता है
- मानव, परिवार के माध्यम से ही, समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित करता है

आवश्यकताओं की पूर्ति की शुरुआत परिवार में ही होती है

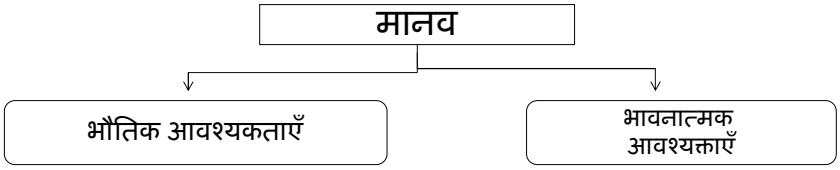

- शारीरिक देख-रेख, खासकर बच्चों, रोगियों व वृद्धों के लिए
- समृद्धि के लिए उत्पादन का क्रियान्वयन
- पोषण, संरक्षण और सही समझ को विकसित करना, बच्चों के लिए
- सही समझ को जीना और प्रमाणित करना, बड़ों के लिए

समृद्धि का मतलब है कि परिवार
- अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पहचानता है
- अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर पाता है
- और वह उत्पादन की विधि, मानव और प्रकृति दोनों का शोषण नहीं करती

मानव मूल्य

अथवा समाधानित मानव का स्वभाव

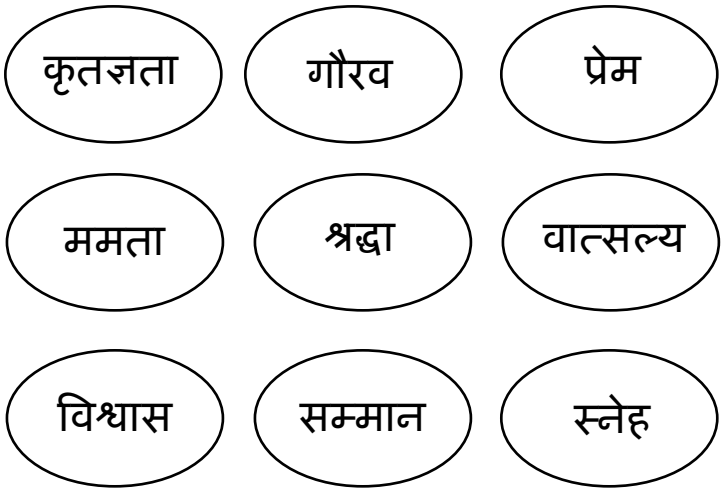

1. विश्वास

- किसी भी मनुष्य के आचरण में हमें दो भाग पहचानने हैं: उसका आशय, और जो आचरण प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त हो रहा है
  - आशय सही होने के बावजूद , किसी भी मानव का आचरण तब तक सही नहीं हो सकता जब तक उसकी समझ पूरी नहीं है
  - सही समझ (संबंधों की, मानव लक्ष्य की) के आधार पर ही सही आचरण होता है। सही आचरण की निश्चितता से विश्वास होता है
  - सबसे पहले हमें अपने आप में देखना है कि हमारा आशय सही है, और सही समझ के आधार पर हममें सही आचरण की निश्चितता आती है। अत: विश्वास की शुरुआत स्वयं में विश्वास से होती है
  - हम स्वयं को समझते हैं तो देख पाते हैं कि दूसरा भी मेरे जैसा ही है
  - अतः संबंधी के साथ शुरुआत, उसके आशय पर विश्वास के साथ होती है। और फिर हमारा प्रयास रहता है कि हम उसके साथ सही समझ बाँट पाएँ, जिससे उसमें भी सही आचरण की निश्चितता आ पाए

2. सम्मान

- संबंधी में श्रेष्ठता को पहचान पाना
- उसके लिए अनिवार्य है कि हमें पता हो कि मानव में श्रेष्ठता क्या है
- मानव लक्ष्य के अर्थ में जीना ही मानव में श्रेष्ठता है, पूर्णता है
- इस पूर्णता के अर्थ में अपना सही मूल्यांकन
- इस पूर्णता/श्रेष्ठता के अर्थ में दूसरे का सही मूल्यांकन, और उसके आधार पर सम्मान

3. स्नेह

- संबंधी की जागृति के प्रति ज़िम्मेदारी का भाव
- संबंधी के साथ मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने में निष्ठा, अथवा, प्रयास में निरंतरता

4. ममता

- संबंधी के शरीर के प्रति ज़िम्मेदारी का भाव
- यह ज़िम्मेदारी परिवार में बच्चों, वृद्धों, रोगियों व गर्भवती महिलाओं के प्रति ज़्यादा महत्वपूर्ण होती है

ममता की अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्यताएँ:

- हमें शरीर की व्यवस्था का ज्ञान हो; यह तभी हो सकता है हम स्वयं स्वस्थ- स्वच्छ जीते हों
- बच्चों के साथ ममता सही रूप में तब ही हो पाती है जब हम जानते हों कि मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है। बच्चे का शरीर छोटा है, परन्तु वह भी एक जीवन है:
  - जो सुखपूर्वक जीना चाहता है
  - जो अपनी समझ के आधार पर कार्य-व्यवहार करता है
  - जिसमें समझने की जिज्ञासा एवं क्षमता है - अतः, वह शरीर व्यवस्था भी समझ सकता है
- बच्चों को पालने का अर्थ ये है कि हम बच्चों को ज़िम्मेदार बनाएँ, न कि उनकी ज़िम्मेदारियाँ ले लें

5. श्रद्धा

- मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने के लिए जो कुछ भी अनिवार्य है, उसे समझने/सीखने/ करने के लिए, जिज्ञासा एवं तत्परता
- संबंधी में ऐसी जिज्ञासा और पात्रता प्रसवित कर पाना
- अगर हम संबंधी में श्रद्धा प्रसवित कर पाते हैं, तो उसके आचरण में श्रेष्ठता को पाने के लिए एक स्वयंस्फ़ूर्त तत्परता दिखेगी

6. वात्सल्य

- संबंधी में सही समझ के लिए जिज्ञासा व पात्रता बना पाते हैं, तो उसे सही समझ प्रदान कर तृप्त कर पाना ही वात्सल्य है
- यह तभी संभव है जब हम उस सही समझ को जीते हों, उसके प्रमाण हों

7. कृतज्ञता

- श्रेष्ठता के अर्थ में प्राप्त सहायता की स्वीकृति का भाव
- किसी को देने योग्य अगर कोई वस्तु है, तो वो है समझदारी
- कृतज्ञता का भाव स्वयंस्फूर्त विधि से सौम्य आचरण के रूप में व्यक्त होता है

8. गौरव

- श्रेष्ठताओं की पहचान और उनको अपनाने का स्वयंस्फूर्त प्रयास
- अगर हमें किसी व्यक्ति के प्रति गौरव है तो उसके गुणों या योग्यताओं को हम सहज रूप से अपने जीने में लाते हैं, अर्थात, सरलता से अंगीकरण करते हैं

9. प्रेम

- यह पूर्ण मूल्य है, बाकी 8 मूल्यों का सम्मिलित रूप है
- संबंधी को मानव लक्ष्य प्रमाणित करने के लिए दिए गए सहयोग में, पूर्व वर्णित सभी मूल्यों की निरंतरता बने रहना ही प्रेम का भाव है
- प्रेममय व्यवहार का अर्थ है कि दूसरे व्यक्ति को उसकी पात्रता के अनुसार सही समझ दे पाना; पात्रता ना होने पर पात्रता विकसित कर पाना

व्यवहार में न्याय

- सभी मानव संबंधों का प्रयोजन एक है - मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने में, एक दूसरे का सहयोग कर पाएँ, पूरक हो पाएँ
- संबंधों में न्याय पूर्वक जीने के लिए हमें:
  - इस प्रयोजन को पहचानना होगा, एवं इस प्रयोजन में निहित अपेक्षाओं को पहचानना होगा
  - उन अपेक्षाओं को पूरा करने की योग्यता से सम्पन्न होना होगा
- अपेक्षाएँ पूरी होने पर ही दोनो पक्ष तृप्त होते हैं, अर्थात, उभयतृप्ति होती है

मानव मूल्यों के रूप में इस प्रस्ताव ने, संबंधों में निहित प्रयोजन एवं अपेक्षाओं को निश्चित, सहज एवं व्यवहारिक रूप में परिभाषित किया है

परिवार : वर्तमान स्थिति की एक समीक्षा

- प्रचलित समझ के अनुसार, 'मानव की आवश्यकतायें' मूलत: भौतिक/आर्थिक ही हैं
- याद करें, हम ने कहा था कि हम जैसा समझे होते हैं, हमारी ज़िन्दगी,दुनिया-समाज का चाल चलन, उसी से चालित होने लगते हैं
  - चाहे वह अन्य मनुष्यों के प्रति हमारा व्यवहार हो, अथवा शेष प्रकृति के साथ कार्य
  - समाज के सभी तन्त्र, चाहे शिक्षा हो, अथवा उत्पादन एवं विनिमय, राजनैतिक अथवा समाजिक ढाँचे, सभी हमारी समझ के अनुरूप ढल जाते हैं

फ़लस्वरूप, परिवार का सन्दर्भ एवं भूमिका भी अत्यन्त बौनी हो गयी है

- परिवार क उद्देश्य सदस्यों कि भौतिक/आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सिमट गया है
- सम्बंधों में सुविधा के साधनों का महत्व अव्वल नंबर पर है।कोई किसी से कितना स्नेह-प्रेम करता है इसका पैमाना भौतिक साधन ही बन कर रह गये हैं
- आर्थिक आपूर्ति की होड़ में संबंधों की, परिवार की उपेक्षा एक सामान्य बात है। कितने साधन पर्याप्त हैं, इस का निर्धारण हो ही नहीं पाता
- आपस में बाँटने को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जुड़े भौतिक मुद्दों से ज्यादा कुछ रहता भी नहीं
- हम सभी अपने सम्बंधों में एक अभाव तो महसूस तो करते हैं, पर समझ में नहीं आता कि उस की भरपाई कैसे हो

4. समाज सहज व्यवस्था

समाज: मानव लक्ष्य को पूर्णता में प्रमाणित करने की स्थली

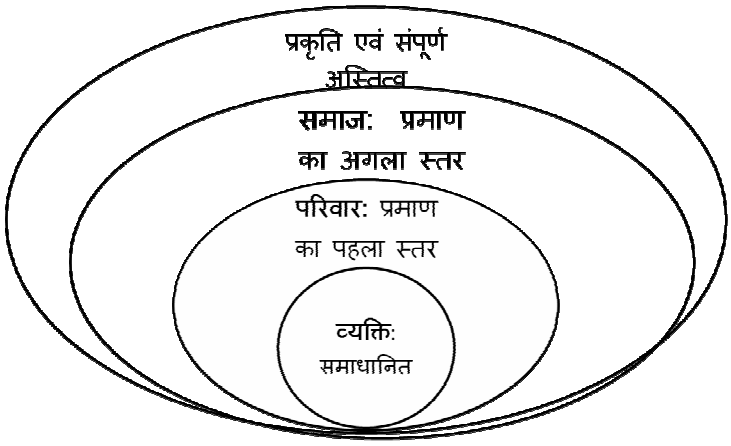

समाज में मानव की पूर्ण क्षमता प्रमाणित होती है अथवा चारों अवस्थाओं के साथ सह-अस्तित्व प्रमाणित होता है

मानवीय समाज की चर्चा पाँच योजनाओं के तहत की जा सकती है:

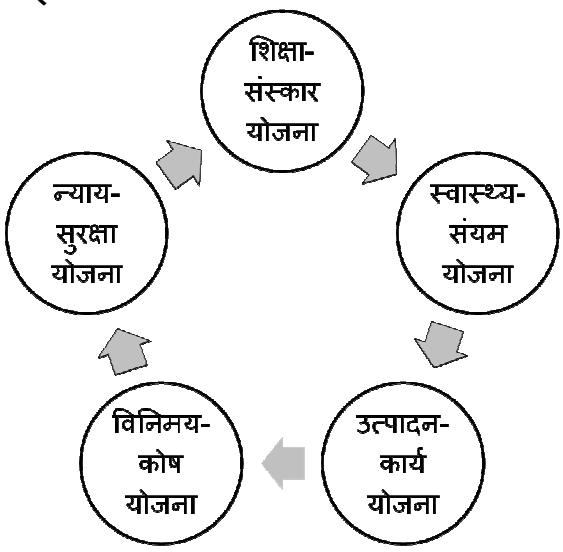

मूल बिन्दु

मानव जिसको भी श्रेष्ठ व वरणीय मानता है, जैसा बनना चाहता है, जिसको पाना चाहता है – सभी सामाजिक ढाँचे/तंत्र, चाहे-अनचाहे उसी की प्रप्ति हेतु नियोजित हो जाते हैं

वर्तमान सामाजिक ढाँचे, हमारी अभी की मान्यताओं/अपूर्ण समझ से निर्गमित हैं

आईए, शुरु करते हैं...

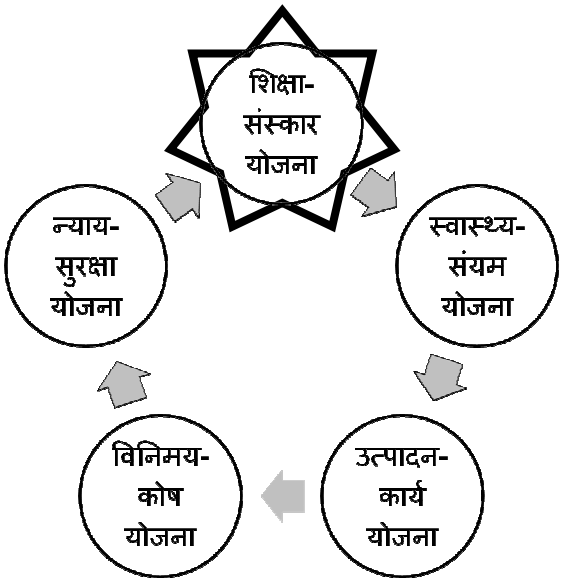

शिक्षा-संस्कार योजना: प्रयोजन

प्रचलित	प्रस्तावित
'मानव = शरीर' की मान्यता के तहत मानव की आवश्यकताओं को शारीरिक/भौतिक सीमा में ही पहचानते हैं	मानव= जीवन + शरीर आवश्यकताएँ = भावनात्मक + भौतिक
फ़लत: प्रचलित शिक्षा मानव को अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य बनाती है। (हालाँकि, उतना भी सबको नहीं बना पाती)	अत: शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य को अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य बनाना मानव की आवश्यकताएँ=समाधान + समृद्धि +सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी

शिक्षा-संस्कार योजना: वस्तु

प्रचलित

- सूचनाओं का ढेर
- पृथक विषय
  - अंतर-संबंधों की समझ एवं एक सम्मिलित प्रयोजन व दृष्टिकोण का नितांत अभाव
  - फ़लस्वरूप, मानव के लक्ष्य की जगह ही नहीं बन पाती
- सीमित हुनरों व कुशलता पर ज़ोर, क्योंकि वह नौकरी दिला सकते हैं

प्रस्तावित

- प्रणाली: अस्तित्व समग्र की व्यवस्था को मूल में रखते हुए, विभिन्न विषयों का अध्ययन। फ़लत: हर विषय के अध्ययन का प्रयोजन स्पष्ट होता है, तथा मानव लक्ष्य के अर्थ में होता है
- शिक्षा की वस्तु
  - मानव का अध्ययन
  - संपूर्ण अस्तित्व का अध्ययन
  - फलस्वरूप, मानवीय आचरण, मानवीय व्यवस्था, मानवीय परिवार व समाज की स्पष्ट अवधारणा बनती है
- हुनर- प्रत्येक बालक को अनेकानेक उत्पादन विधाओं में दक्ष बनाना जैसे कि उनमें उत्पादन-कार्य की प्रवृत्ति बने और वे अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य बनें

शिक्षा-संस्कार योजना: विधि

प्रचलित

- शिक्षण प्रणाली में यह मान्यता निहित है कि बच्चे समझना नहीं चाहते और उनको सिखाने-समझाने के लिए भय एवं प्रलोभन का उपयोग आवश्यक है
- बच्चों की पात्रता में भेद को ध्यान में न रहते हुए, सभी को एक प्रकार से, एक ही समय-सीमा में सीखना-समझना पड़ता है
- चरित्र, मूल्य व नैतिकता जैसी वस्तु भी अन्य विषयों की तरह 'सूचना विधि' से परोसी जाती हैं। अक्सर पढ़ाने वाले भी उन पर अमल करते नहीं पाए जाते

प्रस्तावित

- मानव का स्वभाव ही है समझना-जानना, और प्रत्येक मानव संतान अनेक प्रकार से इसको व्यक्त करती है। अध्ययन का वातावरण उनकी जिज्ञासा पूर्ति के अर्थ में होना होगा। समझने की वस्तु उनकी ज़िन्दगी से सीधा संबंध रखे और उनको उपयोगी व प्रयोजनपूर्ण लगे
- बच्चों की अलग-अलग पात्रता व योग्यता को ध्यान में रखते हुए, शिक्षण विधि का निर्माण
- शिक्षक को प्रमाणित होना पड़ेगा, अर्थात, समझ में परिपूर्ण हो और असके आधार पर मानवीयतापूर्ण आचरण को जीता हो

शिक्षा-संस्कार योजना की सफ़लता के मानक

प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा पूर्ति उपरान्त :

- स्वयं में विश्वास से युक्त
  - अस्तित्व सहज व्यवस्था की समझ के फलस्वरूप स्वयं की समझ, स्वयं के लक्ष्य की स्पष्टता व उसकी पूर्ति की योग्यता संपन्न
- श्रेष्ठता का सम्मान करने योग्य
  - मानव में श्रेष्ठ क्या है उसकी पहचान और उसको समझने व जीने की तत्परता
  - ऐसे श्रेष्ठता संपन्न व्यक्तियों की पहचान, सम्मान व अनुकरण
- समझ में संतुलन एवं जीने में संतुलन
  - समझ संतुलित अथवा पूर्ण
  - जीना संतुलित अथवा मानवीयतापूर्ण आहार, विहार, कार्य-व्यवहार
- व्यवहार में सामाजिक
  - न्याय प्रदायी क्षमता से संपन्न व व्यवहार में नित्य न्याय का प्रमाण
- व्यवसाय में स्वावलम्बी
  - परिवार की आवश्यकता की पहचान और पारिवारिक उत्पादन कार्य में भागीदारी पूर्वक उसकी आपूर्ति
- अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को तत्पर

आईए, देखते हैं...

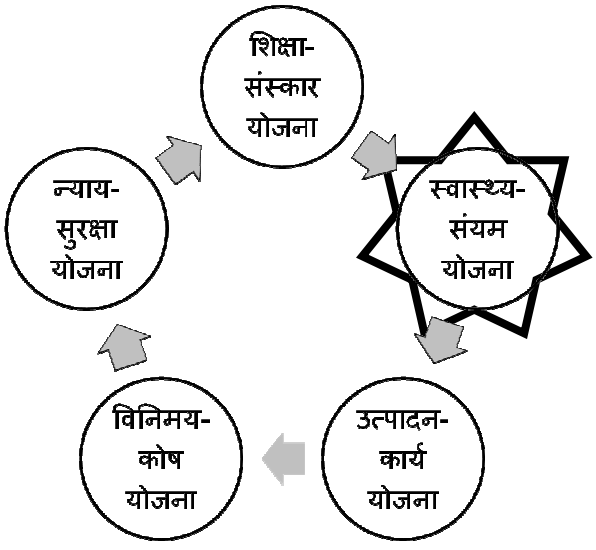

स्वास्थ्य-संयम योजना

वर्तमान स्थिति में अस्वस्थता के कारण...(1)

- इन्द्रिय आस्वादनों में निरंतरता ढूंढने के प्रयासवश उन में अति
- उत्पादन विधाओं में प्राकृतिक नियमों एवं मनुष्य-मनुष्य संबंधों की अवहेलना
  - उत्पाद स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक
  - उत्पादन की विधिओं से प्रदूषण, फलस्वरूप, साफ़ हवा, पानी का अभाव.
  - खाद्य पदार्थों में मिलावट
- असंतुलित जीवन-शैली, क्योंकि हम धन, पद, यश के पीछे अंधाधुन्ध दौड़ रहे हैं
  - फलस्वरूप, मानसिक तनाव और उससे होने वाली बीमारियाँ
- शरीर की व्यवस्था की सही समझ न होने वश खान-पान व दिनचर्या असन्तुलित
- ऐलोपैथिक चिकित्सा
  - बीमारियों के लक्षणों को दबाना
  - दवाओं के 'side-effects'

इन सारे मुद्दों की जड़ हमारे जीने के तरीकों में है...
हमारी अपूर्ण/ गलत 'समझ' में है

स्वास्थ्य-संयम योजना

वर्तमान स्थिति में अस्वस्थता के कारण ...(2)

अस्वस्थता के मूल कारण निम्न मुद्दों पर अपूर्ण-समझ वश है:

- स्वयं - मेरी क्या आवश्यकताएँ हैं, और उनकी पूर्ति कैसे होगी
- शरीर - उसकी आवश्यकताएँ, व्यवस्था, उस पर हमारी जीवन-शैली एवं दिनचर्या का प्रभाव
  - क्या हमने इन्द्रिय आस्वादनों के लिए ऋतु चक्र और उसके अनुसार खान-पान व दिनचर्या के तरीकों को उपेक्षित कर दिया है?
  - क्या शारीरिक श्रम स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है?
- मनुष्य-मनुष्य संबंध
- प्रकृति में व्यवस्था और मनुष्य प्रकृति संबंध

शरीर की व्यवस्था बीमारी से मुक्त है – पर ऐसा तभी घटित होता है
जब हम अस्तित्वगत व्यवस्था को समझ कर उसके अनुसार जीते हैं

स्वास्थ्य-संयम योजना: प्रस्ताव

स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है कि:

- 'मानव=जीवन+शरीर' रूपी समझ
- मानव लक्ष्य की पहचान और उसके अनुरूप जीना
- लक्ष्यमूलक एवं भावमूलक आस्वादन की निरंतरता बनती है, तो इन्द्रिय आस्वादन स्वयंस्फूर्त रूप में नियंत्रित होते हैं
- मानव-शरीर व्यवस्था की समझ
  - सभी की दिनचर्या में श्रम का अवसर एवं सब में श्रम में तत्परता
- प्रकृति के चक्रों को ध्यान में रखते हुए जीना, उत्पादन प्रणालियाँ

एक सुखी, समाधानित मानव ही स्वस्थ रह सकता है

आईए, देखते हैं...

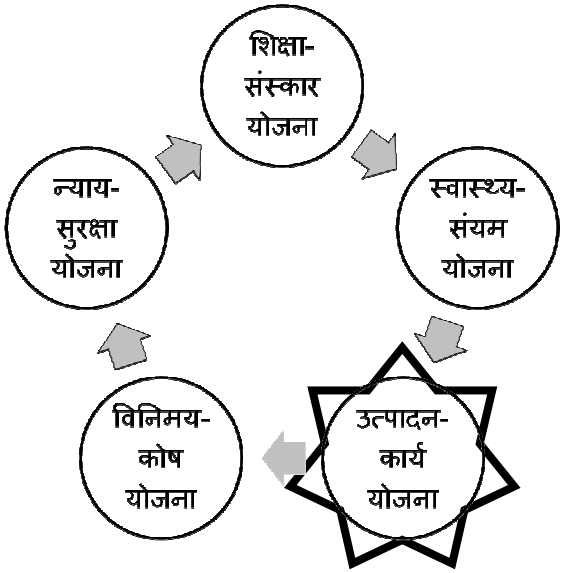

उत्पादन-कार्य योजना

प्रचलित उत्पादन के तरीकों में समस्याएँ (1)

- प्रचलित मान्यता है कि भौतिक वस्तुओं से सुखी हो जाएँगे
- भौतिक वस्तुओं में मानव को तृप्त व सुखी कर पाने की क्षमता ही नहीं है
- हम मान लेते हैं कि अतृप्ति व दुख का कारण है कि अभी हमारे पास पर्याप्त भौतिक वस्तुएँ/ सुविधाएँ संग्रहित नहीं है
  - एक कभी-न-खत्म-होने-वाला चक्र शुरु हो जाता – और हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की सीमा का निर्धारण ही नहीं कर पाते
  - और तो और, भौतिकता व इन्द्रियों में अति कि बावजूद, हममें अतृप्ति बनी ही रहती है
  - यह कभी-न-खत्म-होने-वाला सुविधा-संग्रह का चक्र चलता ही रहता है

उत्पादन-कार्य योजना

प्रचलित उत्पादन के तरीकों में समस्याएँ (2)

- उत्पादन करने वाले भी इन्ही मान्यताओं (सुविधा-संग्रह से सुखी हो जाएँगे) से ग्रसित हैं – अत: उत्पादन **केवल** लाभ की दृष्टि से होता है। उत्पादन से जुड़े सब प्रश्न, जैसे
  - > क्या उत्पादन किया जाए > कितना उत्पादन किया जाए
  - > कहाँ उत्पादन किया जाए > कैसे उत्पादन किया जाए

  केवल लाभ के पैमाने पर उत्तरित होते हैं
- 'ज़िन्दगी एक संघर्ष है। जीवित रहने के लिए प्रतिस्पर्धा करनी ही पड़ेगी।' ' प्रकृति मानव के उपयोग के लिए एक संसाधन है, इस पर विजय पाना है'- यह मान्यताएं उत्पादन का आधार बनती हैं – फलस्वरूप, शोषण अनिवार्य हो जाता है, चाहे वो प्रकृति का हो या मानव का

उत्पादन-कार्य योजना

प्रचलित उत्पादन के तरीकों में समस्याएँ (3)

- कई शताब्दियों से चली आ रही शोषण की इस प्रक्रिया से उत्पादन के संसाधन कुछ ही लोगों के हाथ में एकत्रित हो गए हैं। साधन-संपन्न और साधन-विहीन लोगों के बीच की दूरी बहुत बढ़ गई है...
  - – समाज में विरोध, संघर्ष और द्वंद बढ़ा है
- उत्पादन का केन्द्रीकरण हूआ है, जो तथाकथित रूप से उत्पाद के दाम कम करता है। परन्तु असलियत में इस 'कम दाम' का बोझ प्रकृति और शोषित मानव झेल रहे हैं
- उत्पादन का कच्चा माल स्थानीय रूप में उपलब्ध न होने वश साम्राज्यवाद और युद्ध की जगह बन जाती है
- विज्ञापनों के माध्यम से कृत्रिम आवश्यकताएँ निर्मित की जाती हैं
  - – विज्ञापन सुख, शाँति, स्वतंत्रता, सम्मान 'बेचते' हैं। भौतिक वस्तुओं से सुखी होने की मान्यता इन विज्ञापनों के माध्यम से और भी प्रगाढ होती है

उत्पादन-कार्य योजना: समाधान क्या है?

- मानव में 'सही' समझ होनी पड़ेगी:
  - भावनात्मक आवश्यकताओं की, और उनकी पूर्ति के तरीकों की
  - मानव-मानव संबंध की
  - प्रकृति में व्यवस्था और मानव प्रकृति संबंध

प्रस्तावित उत्पादन-कार्य योजना: कुछ मूल बिन्दु

- मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन
  - मनुष्य जब अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं को पहचानता है और उनकी पूर्ति कर पाता है, तो भौतिक आवश्यकताएँ स्वयंस्फ़ूर्त रूप में नियंत्रित होती हैं
- प्रकृति के चक्रों की समझ पर आधारित उत्पादन
  - आवर्तनशीलता
  - धरती की सतह पर मिलने वाली वस्तुओं से उत्पादन
- मनुष्य के श्रम का उपयुक्त मूल्याँकन
- उत्पादन का विकेन्द्रीकरण
- हर परिवार का उत्पादन से जुड़ना और उत्पादन के संसाधनों का न्यायिक आबंटन

आईए, देखते हैं...

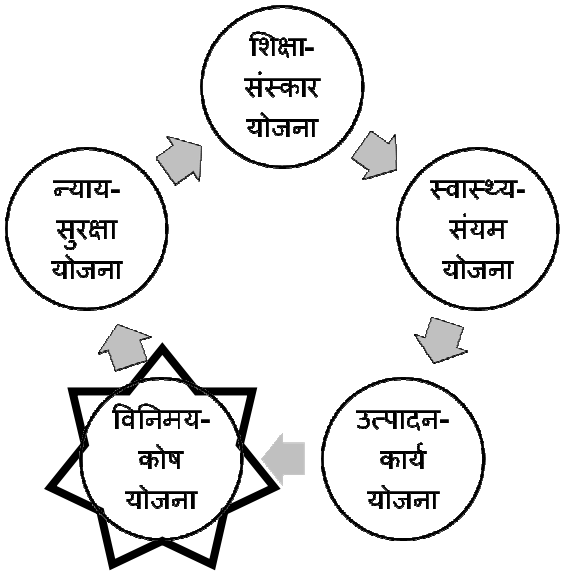

विनिमय-कोष योजना

प्रचलित	प्रस्तावित
लाभ-हानि युक्त विनिमय. दोनों पक्ष चाहते हैं कि कम दे के कर ज़्यादा ले लें। विनिमय के बाद दोनो ही पक्ष अतृप्त रहते हैं।	**लाभ-हानि मुक्त विनिमय**: श्रम मूल्य एवं उपयोगिता के आधार पर वस्तुओं का मूल्यांकन
वस्तु की कीमत 'माँग और आपूर्ति' (demand and supply) के आधार पर निर्धारित होती है। मनुष्य के श्रम का मूल्यांकन भी ऐसे ही सिद्धांत से प्रेरित – अत: अत्यन्त अन्यायपूर्ण	अत: विनिमय के उपरांत दोनो पक्षों को उतना ही प्रतिफल उपलब्ध रहेगा जो विनिमय के पूर्व था - दोनों पक्ष को तृप्ति। जब हम मनुष्य-मनुष्य संबंध देखते हैं तो ये एक स्वाभाविक प्रक्रिया है
लाभ की मानसिकता से भण्डारण – कृत्रिम अभाव निर्मित करने के लिए, जिससे लाभ बढे। लाभ बिना शोषण में वृद्धि के बढता नहीं ।	सुनिश्चितता, सुरक्षा, संरक्षण की दृष्टि से कोष

आईए, देखते हैं...

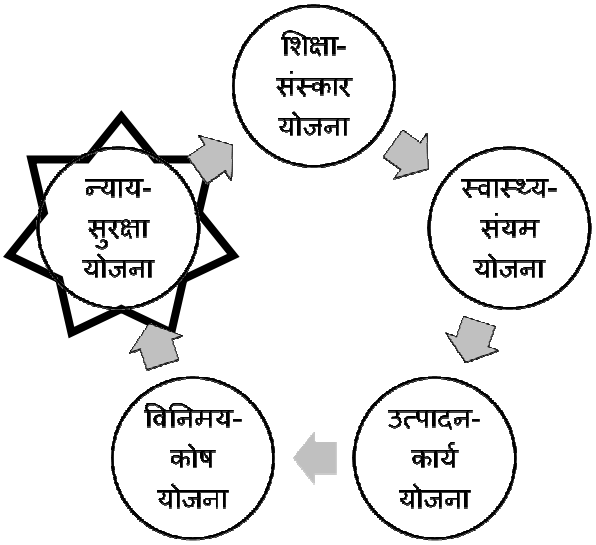

न्याय-सुरक्षा योजना

प्रचलित
दुनिया के सभी संविधान नियम-कानून का पालन करवाने के लिए भय और बल का प्रयोग करते है गलती को गलती से, अपराध को अपराध से, युद्ध को युद्ध से रोकते हैं
संविधान: सर्व-सम्मति निर्मित करने की कोई विधि ही नहीं है जब हमारी समझ में ही विरोध और संघर्ष है, तो ऐसे नियम-कानून संभव ही नहीं हैं जिसमें सबकी सहमती हो, जो सबके लिए न्यायपूर्ण हों। इसलिए सर्व-सम्मति का सवाल ही नहीं उठता। भय और बल का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है
सरकार चलाना भी एक व्यवसाय/पेशा हो गया है, जो सुविधा-संग्रह की सर्वोच्च विधि बन गया है

न्याय-सुरक्षा योजना

प्रस्तावित
मानव लक्ष्य और सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व व्यवस्था सर्व-सम्मति का आधार बनते हैं। इस समझ के आधार पर जो मानवीयतापूर्ण आचरण का प्रस्ताव है, उसमें सर्व-मानव की सहमति एवं तृप्ति का प्रावधान है। इसलिए यह सब मनुष्यों को सहज स्वीकार होता है, और एक सार्वभौम मानवीय संविधान का आधार बनता है।
सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, समझदार व्यक्तिओं द्वारा ऐच्छिक रूप में होगी । हर समाधानित व्यक्ति, अपने परिवार की समृद्धि को सुनिश्चित कर के, मानव लक्ष्य को प्रमाणित करने के अर्थ में, अपनी भावनात्मक तृप्ति के लिए सार्वभौम व्यवस्था में स्वयंस्फूर्त विधि से भागीदारी करेगा ही।

5. अस्तित्व सहज व्यवस्था

‘अस्तित्व’ शब्द से क्या अभिप्राय है?

- अस्तित्व= ‘जो है’, अर्थात, जो कुछ भी '**है**’
- ‘अस्तित्व’ की जगह हम
  - ब्रह्मांड
  - सृष्टि

  जैसे शब्दों का भी प्रयोग कर सकते हैं

प्रस्ताव यह है कि:
•मानव संपूर्ण अस्तित्व को समझ सकता है
•संपूर्ण अस्तित्व को समझना मानव की अनिवार्यता है

‘अस्तित्व’ को क्यों समझें?
किसी भी दर्शन/समझ का ढाँचा कुछ ऐसा होगा:

व्यवहारिक स्तर पर
हर दर्शन जीने की एक विधि प्रस्तावित करता है

वजह/तार्किक स्तर
…प्रस्तावित विधि ‘क्यों ठीक है’, अथवा उसे ‘क्यों जिआ जाए’, इसके पीछे की वजह भी अक्सर प्रस्तुत की जाती है

अस्तित्वगत व्यवस्था अथवा तात्विक स्तर
वजह का आधार, उस दर्शन के अनुसार जो अस्तित्व में निहित ‘डिज़ाईन’ अथवा व्यवस्था है, वह होता है। अत: दर्शन मूल में ऐसा एक ‘तात्विक आधार’ भी प्रस्तुत करता है

‘अस्तित्व’ को क्यों समझें?
आईए, जो पिछले पन्ने पर कहा गया, उसे एक उदाहरण से समझते हैं

[व्यवहारिक स्तर पर सुझाव]
किसी दर्शन में यह प्रस्तावित हो सकता है कि हमें अन्य मनुष्यों के साथ प्रेम पूर्वक जीना चाहिये

[प्रस्तावित वजह/तार्किक स्तर]
और फिर ऐसा कहा हो सकता है कि ऐसा करने से इश्वर हम पर कृपा करेंगें

[प्रस्तावित अस्तित्वगत व्यवस्था]
कोई इश्वर है; उस इश्वर में ऐसी क्षमता है;और वह इश्वर इस प्रकार से कार्य करता है;और मनुष्य चाहते हैं कि उन पर इस प्रकार से कृपा की जाये…

इस से यह उभरता है कि कोई भी दर्शन ‘काम’ तभी करेगा, अथवा ‘प्रमाणित’ तभी होगा यदि उस में अस्तित्व में निहित व्यवस्था को ‘पा लिया है’ अथवा ‘समझ लिया है’ अथवा ‘अनावरित कर लिया है’। अर्थात, वास्तिवकता *जैसी है*, उसे *वैसा ही* समझा है !

‘अस्तित्व’ को क्यों समझें?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है,

- मानव में सुख की चाह निहित है
- मानव, इस चाह की पूर्ति के लिए, अपनी समझ के अनुसार, प्रयासरत रहता है। समझ से मूलत: अभिप्राय है:
  - मानव स्वयं को, अपने सुखी होने के तरीकों को कैसे समझा है
  - अन्य मनुष्यों, शेष प्रकृति एवं सम्पूर्ण अस्तित्व के प्रयोजन, और उनके साथ अपने अंतर-संबंधों को कैसे समझा है
- अत: समझ की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि अस्तित्व को समझना, मानव के कार्यकलापों के लिए एक अनिवार्यता है

‘अस्तित्व’ को समझने का क्या अर्थ है?

‘अस्तित्व को समझना’ निम्न चार प्रश्नों को उत्तरित करने के रूप में देखा जा सकता है:

1. अस्तित्व में क्या-क्या है?

   अर्थात, अस्तित्व की सभी वास्तविकताओं की सूची बना पाना

2. अस्तित्व कैसा है?

   अर्थात, इन सभी वास्तविकताओं की अंतर-क्रियाओं और अंतर-संबंधों में कोई लय-ताल/नियम/निश्चितता है क्या? यदि हाँ, तो कैसा है?

3. अस्तित्व क्यों है?

   उपरोक्त दो उत्तरों के तहत, अस्तित्व में कोई प्रयोजन है क्या?

4. और सबसे महत्वपूर्ण, उपरोक्त उद्गारित अस्तित्वगत व्यवस्था का मेरे लिए, मेरे जीने में क्या महत्व/प्रभाव/फ़लितार्थ है?

अस्तित्व सहज व्यवस्था

आईये, प्रथम प्रश्न को देखते हैं:

1. अस्तित्व में क्या-क्या है?

   अर्थात, क्या हम अस्तित्व की सभी वास्तविकताओं की सूची बना सकते हैं?

2. अस्तित्व कैसा है?

   इन सभी वास्तविकताओं की अंतर-क्रियाओं और अंतर-संबंधों में कोई लय-ताल/नियम/निश्चितता है क्या? यदि हाँ, तो कैसा है?

3. अस्तित्व क्यों है?

   उपरोक्त दो उत्तरों के तहत, अस्तित्व में कोई प्रयोजन है क्या?

4. और सबसे महत्वपूर्ण, उपरोक्त उद्गारित अस्तित्वगत व्यवस्था का मेरे लिए, मेरे जीने में क्या महत्व/प्रभाव/फ़लितार्थ है?

अस्तित्व = जो 'है'

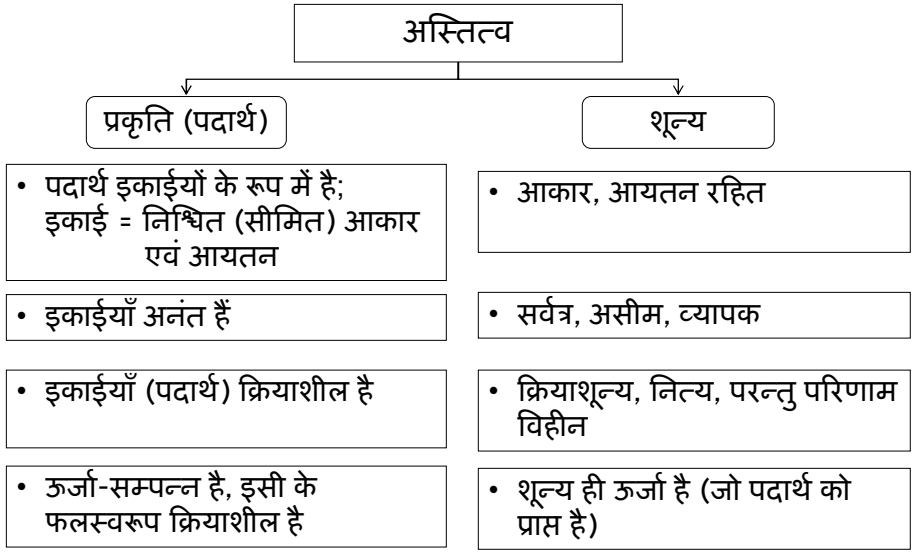

अस्तित्व नित्य है

- नित्य अर्थात आदि और अंत से रहित है। इसकी उत्पत्ति अथवा प्रलय सिद्ध नहीं होता।
- अस्तित्व में सभी वास्तविकताएँ भी नित्य हैं
- अतः प्रकृति और शून्य भी आदि और अंत से रहित हैं, उत्पत्ति और नाश से रहित हैं
  - परन्तु प्रकृति (पदार्थ) क्रियाशील है। इस क्रियाशीलता वश प्रकृति में परिणामशीलता है, अतः प्रकृति कि इकाईयों में परिवर्तन होता है।

अस्तित्व सहज व्यवस्था

आईये, द्वितीय प्रश्न को देखते हैं:

1. अस्तित्व में क्या-क्या है?

   अर्थात, क्या हम अस्तित्व की सभी वास्तविकताओं की सूची बना सकते हैं?

2. अस्तित्व कैसा है?

   इन सभी वास्तविकताओं की अंतर-क्रियाओं और अंतर-संबंधों में कोई लय-ताल/नियम/निश्चितता है क्या? यदि हाँ, तो कैसा है?

3. अस्तित्व क्यों है?

   उपरोक्त दो उत्तरों के तहत, अस्तित्व में कोई प्रयोजन है क्या?

4. और सबसे महत्वपूर्ण, उपरोक्त उद्गारित अस्तित्वगत व्यवस्था का मेरे लिए, मेरे जीने में क्या महत्व/प्रभाव/फ़लितार्थ है?

अस्तित्व = सत्ता में संपृक्त प्रकृति

संपृक्त, फलस्वरूप ऊर्जा संपन्न;

ऊर्जा संपन्न, फलस्वरूप क्रियाशील;

यह क्रियाशीलता निश्चित / नियंत्रित / नियमित है

अत: प्रकृति में क्रियाशीलता को समझना है, अर्थात, उसमें नियम, प्रगटन क्रम एवं उसके प्रयोजन को समझना ही अस्तित्व को समझने का ध्रुव बिन्दु है

प्रकृति में क्रियाशीलता

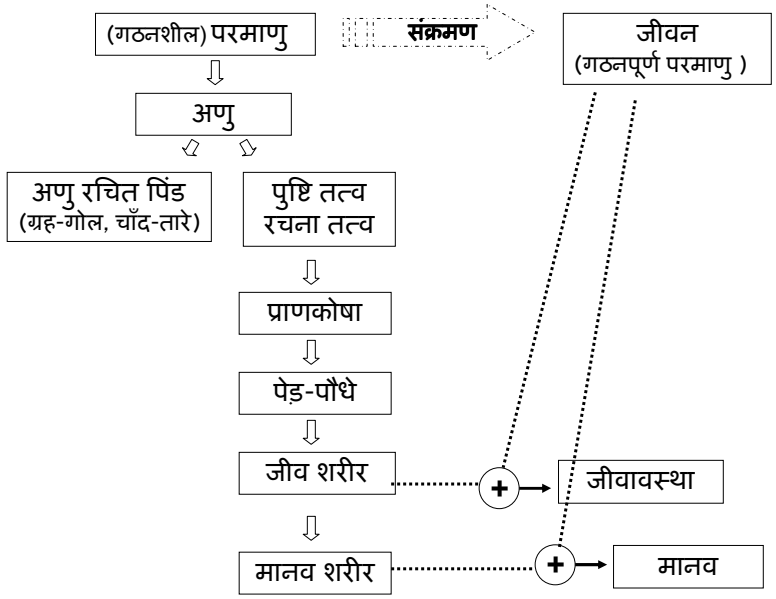

प्रकृति में क्रियाशीलता नियमित है, जिसमें स्वयंस्फ़ूर्त विधि से निम्न चार अवस्थाओं का प्रगटन है

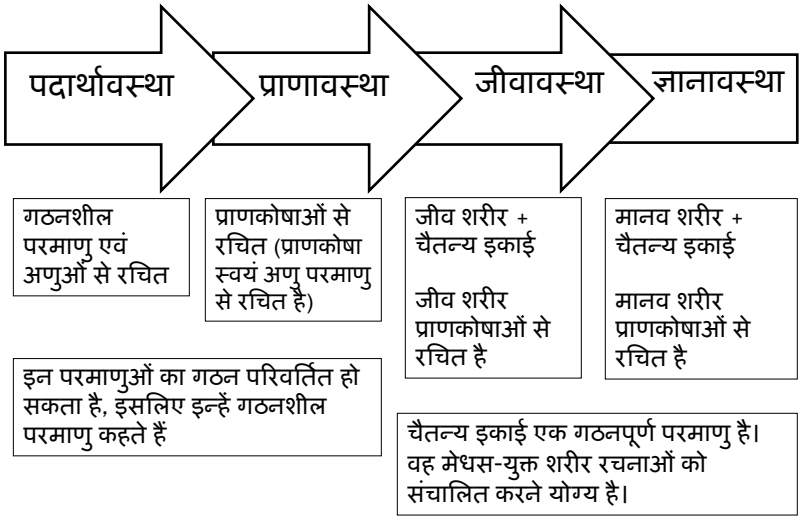

चैतन्य इकाई - जीवन

- जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु है; गठनशील परमाणु ही संक्रमण पूर्वक गठनपूर्ण होता है
  - जीवन परमाणुओं का गठन भी अस्तित्वगत प्रगटन में एक निश्चित, नियमबद्ध घटना है
- जीवन परमाणु समृद्ध मेधस युक्त शरीर को संचालित कर जीवन्त बनाने की योग्यता संपन्न है
  - हम सभी मानव मूलतः एक जीवन इकाई हैं
- गठन तृप्त अथवा पूर्ण होने की वजह से, एक बार गठित होने के बाद, गठनपूर्ण परमाणु की निरंतरता हो जाती है। अतः जीवन निरंतर है, अमर है
- जीवों में जीवन 'जीने की आशा' को व्यक्त करता है
  - यह वंशानुषगी विधि से निश्चित आचरण के रूप में दिखता है
- मानव में जीवन कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता के साथ 'सुख से जीने की आशा' को व्यक्त करता है। 'सुख से जीने की आशा' की पूर्ति सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभवपूर्वक होती है

प्रकृति में चार अवस्थाएँ:

प्रकृति की निश्चित क्रियाशीलता वश स्वयंस्फूर्त प्रगटन

अवस्था	मौलिकता/ धर्म	मौलिक क्रिया	आचरण में निश्चितता का आधार	क्षमता
पदार्थ अवस्था	अस्तित्व	संगठन-विगठन	परिणाम अनुषंगी	पहचानना, निर्वाह करना
प्राण अवस्था	अस्तित्व, एवं पुष्टि	श्वसन-प्रश्वसन	बीज अनुषंगी	
जीव अवस्था	अस्तित्व, पुष्टि एवं जीने की आशा	वंश केन्द्रित आहार-विहार	वंश अनुषंगी	मानना, पहचानना, निर्वाह करना
ज्ञान अवस्था	उपरोक्त सभी एवं सुख से जीने की आशा	समझ आधारित आहार-विहार, कार्य-व्यवहार	समझ अनुषंगी	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना

अस्तित्व सह-अस्तित्व रूपी है (1)

अस्तित्व सह-अस्तित्व रूपी है. इसका अभिप्राय है कि:

- हर अवस्था अन्य अवस्थाओं के लिए पूरक एवं उपयोगी है। चारों अवस्थाओं में परस्पर सामंजस्य है - अस्तित्व में कोई टकराव, संघर्ष, द्वंद नहीं है
- हर इकाई सह-अस्तित्व का प्रमाण प्रस्तुत करती है, अर्थात
  - हर इकाई स्वयं में व्यवस्थित है एवं संपूर्ण व्यवस्था में भागीदार है
  - स्वयं में व्यवस्था = निश्चित आचरण

    संपूर्ण व्यवस्था में भागीदारी = अस्तित्वगत सलक्ष्य, सप्रयोजन व्यवस्था में निश्चित भागीदारी
- अस्तित्व में व्यवस्था है ही, उसे 'बनाना' नहीं है
  - मानव को तृप्त रहने के लिए, इस व्यवस्था को समझना है, और अपने जीने में व्यवस्था को प्रमाणित करना है

अस्तित्व सह-अस्तित्व रूपी है (2)

- अस्तित्व में क्रमिक रूप में विकसित अवस्थाओं का प्रगटन है – पदार्थावस्था से प्राणावस्था से जीवावस्था से ज्ञानावस्था
  - यह प्रगटन क्रम, सह-अस्तित्व विधि से - अर्थात सत्ता और प्रकृति के सह-अस्तित्व में - स्वयंस्फूर्त रूप से प्रगट है
  - अस्तित्व में नियम है, नियंता नहीं है

- स्वयं में व्यवस्था अथवा सार्थकता और सामंजस्य की चाह, सपूर्ण व्यवस्था में भागीदारी अथवा परस्परता में सह-अस्तित्व पूर्वक जीने की चाह, मानव भी स्वत: ही महसूस करता है
  - इसका प्रमाणीकरण अस्तित्व सहज व्यवस्था को समझने एवं जीने पर ही हो पाता है

अस्तित्व सहज व्यवस्था

आईये, तृतिय प्रश्न को देखते हैं:

1. अस्तित्व में क्या-क्या है?

   अर्थात, क्या हम अस्तित्व की सभी वास्तविकताओं की सूची बना सकते हैं?

2. अस्तित्व कैसा है?

   इन सभी वास्तविकताओं की अंतर-क्रियाओं और अंतर-संबंधों में कोई लय-ताल/नियम/निश्चितता है क्या? यदि हाँ, तो कैसा है?

3. अस्तित्व क्यों है?

   उपरोक्त दो उत्तरों के तहत, अस्तित्व में कोई प्रयोजन है क्या?

4. और सबसे महत्वपूर्ण, उपरोक्त उद्गारित अस्तित्वगत व्यवस्था का मेरे लिए, मेरे जीने में क्या महत्व/प्रभाव/फ़लितार्थ है?

अस्तित्व में प्रगटन निश्चित है एवं सलक्ष्य है

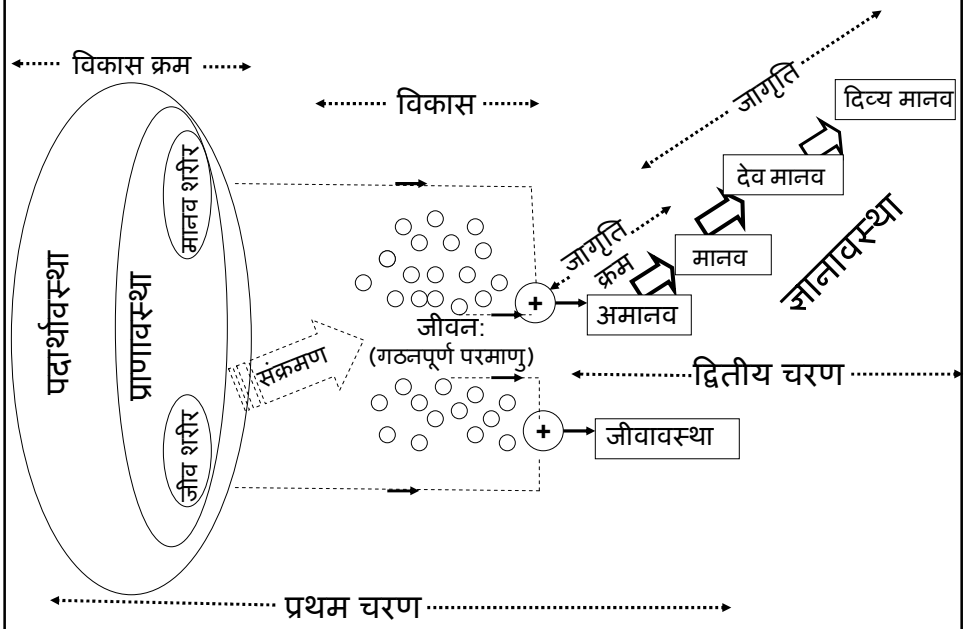

अस्तित्व में समस्त क्रियाशीलता पिछले चित्र में दर्शाए गए विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के अर्थ में ही है

- प्रथम चरण (विकास क्रम, विकास) स्वयंस्फूर्त है, अर्थात, इसमें, मानव की कोई भागीदारी नहीं है
- द्वितीय चरण (जागृति क्रम, जागृति) में मानव की भागीदारी है
  - यह भागीदारी सक्रिय रूप में तब हो पाती है जब मानव अस्तित्व सहज प्रयोजन को समझता है और यह देख पाता है कि कैसे यह प्रगटन/प्रयोजन उसकी सुख की आशा से जुड़ा है

मानवीयतापूर्ण आचरण को जीती हुई मानव परंपरा ही अस्तित्व का लक्ष्य है। इस फ़लन में ही सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व का प्रतिरूप मानवीय परंपरा के रूप में प्रगट होता है

अस्तित्व सहज व्यवस्था

आईये, अब चौथे एवं सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न को देखते हैं:

1. अस्तित्व में क्या-क्या है?

   अर्थात, क्या हम अस्तित्व की सभी वास्तविकताओं की सूची बना सकते हैं?

2. अस्तित्व कैसा है?

   इन सभी वास्तविकताओं की अंतर-क्रियाओं और अंतर-संबंधों में कोई लय-ताल/नियम/निश्चितता है क्या? यदि हाँ, तो कैसा है?

3. अस्तित्व क्यों है?

   उपरोक्त दो उत्तरों के तहत, अस्तित्व में कोई प्रयोजन है क्या?

4. उपरोक्त उद्गारित अस्तित्वगत व्यवस्था का मेरे लिए, मेरे जीने में क्या महत्व/प्रभाव/फ़लितार्थ है?

जीवन को समझने पर, जीवन की आवश्यकताओं को समझने पर, सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व को समझने पर, मानवीय आचरण किसी भी मानव में स्वयंस्फूर्त आचरण के रूप में फलित होता है

यह इसलिए है, क्योंकि...

जीवन को समझने पर ही हमें स्पष्ट होता है कि...

• भावनात्मक एवं भौतिक आवश्यकताएँ, दो भिन्न प्रकार की आवश्यकताएँ हैं

• भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति अस्तित्व समग्र को समझने से, सह-अस्तित्व विधि से जीने से ही पूरी होती है। सह-अस्तित्व विधि से जीना = परिवार, समाज, सार्वभौम व्यवस्था में अपनी भागीदारी निर्वाह कर पाना

• भौतिक आवश्यकताओं की मात्रा का निर्धारण भी तभी हो पाता है जब हम इन्हें भावनात्मक आवश्यकताओं से अलग रूप में देख पाते हैं। इनकी पूर्ति परिवार उत्पादन पूर्वक करता है।

• जीवन की तृप्तिपूर्वक जीने की चाह की पूर्ति तभी हो सकती है जब हम अपनी दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं

यह इसलिए है, क्योंकि...

सह-अस्तित्वरूपी अस्तित्व की व्यवस्था समझने के उपरांत ही हम समझते हैं कि...

- अस्तित्व में प्रत्येक इकाई स्वयं में व्यवस्थित है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है
- मानव में भी व्यवस्थित होने की, व्यवस्था में भागीदारी करने की चाह निहित है और स्वत: महसूस भी होती है
- मानव में स्वयं में व्यवस्था का अनुभव अस्तित्व को समझने पर और इसके फलस्वरूप, समग्र व्यवस्था में अपनी भागीदारी, अपना प्रयोजन समझने एवं जीने पर होता है
- सह-अस्तित्वरूपी आचरण स्वयंस्फूर्त एवं उत्सवपूर्वक व्यक्त होता है, यही मानवीय आचरण है

मानवीय आचरण क्या है?

सरल भाषा में कहें तो **मानवीय आचरण** उसे ही कहेंगे, जो…

- मुझको तृप्त करता है, मुझमें व्यवस्था/सामंजस्यता का भाव फलित कराता है
- मेरी परस्परता में अन्य मनुष्यों के साथ में उभयतृप्ति-दायक है
- प्रकृति में चारों अवस्थाओं के साथ पूरक एवं व्यवस्थाकारक है

मानवीय आचरण को थोड़े विस्तार में देखें तो, उसका परिवार, समाज, प्रकृति में निम्नलिखित रूप में प्रगटन है:

- संबंधों में प्रयोजनों की पहचान, फ़लस्वरूप मूल्यों का निर्वाह (अथवा जीने में भावों की निरन्तरता)

- स्व-धन
  - अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता एवं प्रमाण
- स्वनारी-स्वपुरुष
  - समाज में स्वीकृत विधि से दाम्पत्य संबंध
- दयापूर्ण कार्य-व्यवहार
  - परिवार, समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था के प्रति अपने कर्तव्यों-दायित्वों का पहचान एवं निर्वाह

- जीने की शैली में साधनों का उत्पादन, सदुपयोग एवं सुरक्षा
  - आवर्तनशील विधि से उत्पादन
  - सदुपयोग: समस्त साधनों का मानव लक्ष्य के अर्थ में नियोजन
  - सदुपयोग के लिए संरक्षण

ज्ञानावस्था में चेतना का विकास

	दृष्टि	लक्ष्य	स्वभाव	प्रमाण
पशु , राक्षस मानव	•प्रिय •हित •लाभ	•दूसरों से ज़्यादा रूप, पद, धन, बल •'विषेश' बनना	दीनता, हीनता, क्रूरता	•स्वयं को दूसरों से कम/अधिक मानना •अव्यवस्थाओं का प्रकाशन - व्यक्तिवादिता, भोगोन्माद, कामोन्माद, लाभोन्माद
मानव	•न्याय	•स्वयं में समाधान •भावमय एवं समृद्ध परिवार	धीरता, वीरता, उदारता	स्वायत्त मानव, परिवार मानव का प्रमाण अर्थात, समाधान-समृद्धि पूर्वक जीना
देव, दिव्य मानव	•न्याय •धर्म •सत्य	•स्वयं में समाधान •भावमय एवं समृद्ध परिवार •अखण्ड समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में भागीदारी	दया, कृपा, करुणा, धीरता, वीरता, उदारता	•स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज मानव एवं व्यवस्था मानव का प्रमाण •सार्वभौम व्यवस्था में निष्ठा एवं भागीदारी

मानवीय स्वभाव

धीरता	न्यायपूर्वक जीने में निष्ठा
वीरता	धीरता सहित, दूसरों को न्याय उपलब्ध कराने में अपनी भौतिक एवं बौद्धिक शक्तियों का नियोजन
उदारता	वीरता सहित, तन, मन, धन रूपी अर्थ का नियोजन अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में करना
दया	उदारता सहित, •जीने दो और जिओ •जो जैसा है, जैसे जी रहा है उसमें हस्तक्षेप न करते हुए उसके विकास में सहायक होना • पात्रता के अनुरूप वस्तु दे पाना
कृपा	दया सहित, दूसरे में सही की पात्रता बना पाना
करुणा	दया और कृपा का संयुक्त रूप – पात्रता के अभाव में पात्रता प्रसवित कर पाना, वस्तु के अभाव में वस्तु उपलब्ध करा पाना

इस बार के लिये इतना ही

अन्त वाक्य…

- यह लेख हमारे (आतिशी एवं प्रवीण) द्वारा उस अवस्था में तैयार किया गया है जब खुद भी हम सह-अस्तित्ववाद के अध्ययन क्रम में ही हैं
  - अतः प्रस्तुति में कुछ कमी/त्रुटि कि गुंजाईश है
- प्रस्तुति का ढांचा जिस प्रकार से हम परिचय-शिविर रखते हैं, उस अनुसार है। खासकर प्रथम हिस्सा -सन्दर्भ स्थापन।
  - परिचय शिविर को ध्यान में रखते हुए, दर्शन के शब्दानुशासन में भी थोड़ी ढिलाई सम्भवतः है